आए कहां से,
जाना कहां रे?

मृत्यु के बाद जन्म से पहले

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

मृत्यु के बाद, जन्म से पहले

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

    Rajneeshfragrance

+91 7988229565
+91 7988969660
+91 7015800931
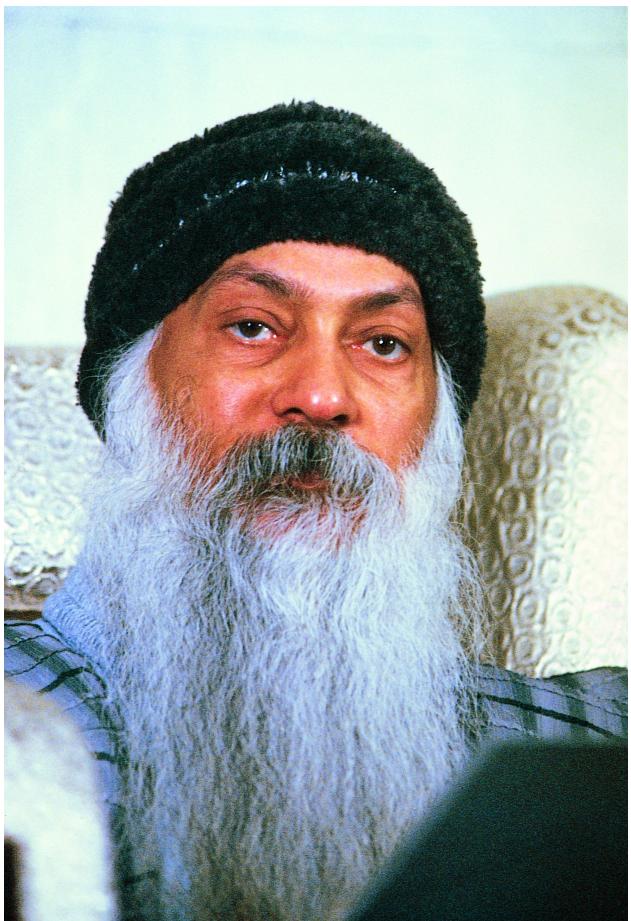
ओशो के श्री चरणो में अहोभाव के साथ

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

प्रस्तावना

यहां बड़ी अजीब विडम्बना है कि मनुष्य इस जगत के बारे में कुछ जानता है। उसने पढ़ा है गणित, विज्ञान, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र। और वह इन विषयों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर झटपट दे देता है। किन्तु जब उससे पूछा जाता है कि 'तू कौन है?' तब वह चुप रह जाता है। यदि सब कुछ जान लिया और स्वयं के बारे में नहीं जाना तो सारा जानना बेकार है। और वास्तविकता यह है कि जानने की प्रक्रिया स्वयं से ही शुरू होती है। जहां तुम खड़े हो, यात्रा वहीं से आरंभ होती है।

हमारा एक दिन जन्म हुआ था। यह तो निश्चित है कि हम कहीं से आए हैं। और पहले भी थे तभी तो आए हैं। एक दिन मृत्यु भी होगी। यह भी निश्चित है कि हमें कहीं और जाना भी है। संतों ने कहा है 'रहना नहीं देस बेगाना है।' किसी ने इस संसार को सराय कहा, किसी ने मेला, किसी ने सपना कहकर इसके मिथ्यात्व को घोषित किया है। किन्तु स्वप्न ही सही, उसके अस्तित्व को कैसे नकारा जा सकता है। ऐसे ही यह सांसारिक जीवन क्षणिक ही सही किंतु मौजूद तो है।

संसार के सभी धर्मों ने यह तो स्वीकार किया है कि जीवन क्षणिक है किन्तु उसके आने-जाने और कुछ अन्य बातों में भेद है। ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म पुनर्जन्म को नहीं मानते। पुराने धर्म जैसे हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म? सभी पुनर्जन्म को जानते हैं। ऋषि कहता है-'पुनर्पि जननं, पुनर्पि मरणं, पुनर्पि जननि जठरे शयनं' मनुष्य बार-बार जन्मता है, बार-बार करता है, बार-बार मां के गर्भ में आता है। फिर भी इस संसार में आकर वह संसार से मोह कर बैठता है। संसार के प्रति उसकी पकड़ मजबूत होती जाती है। किन्तु हमारे मनीषी प्रायः सभी प्राचीन ग्रंथों के माध्यम से बताते हैं कि इस संसार के अतिरिक्त कहीं स्वर्ग है, कहीं नर्क है, बैकुंठ धाम है, विष्णु लोक, सत्य लोग आदि हैं।

हमारे कर्म प्रायः दो भावों से संचालित होते हैं- भय और लोभ! प्राचीन ऋषियों ने इन्हीं दोनों भावों का सहारा लिया है ताकि मनुष्य सन्मार्ग पर चले। बुरे कर्म करोगे तो नर्क में सड़ोगे। वहां गर्म तेल के उबलते कढ़ाओं में जलाए जाओगे। गर्म सलाखों से दागे जाओगे और अनकों प्रकार की भीषण यातनाएं दी जाएंगी।

इसी प्रकार लोभ दिया कि शुभ कर्म करोगे तो स्वर्ग में जाओगे। वहां सुख की सुख है। जो यहां नहीं मिला वह मिलेगा। यहां सुंदर नारी नहीं मिली, वहां हूर की परियां मिलेंगी- अप्सराएं, सदा नवयौवना। यहां शराब निषेध है किन्तु वहां शराब के चश्मे बहते मिलेंगे। बिना कोई कर्म किये सब प्रकार की सुख-सुविधाएं मिलेंगी क्योंकि वहां कल्पवृक्ष है। और फिर स्वर्ग की भी अवधि सीमित है। उसके बाद मोक्ष है। जहां सुख-दुखों के पार सदा आनंद की स्थिति है।

तो इसी तरह के अनेक शब्दों और बातों के बारे में हम अनेक प्रकार की धारणाओं से ग्रस्त हैं। यद्यपि हमारे प्राचीन ग्रंथों में इन विषयों पर बहुत कुछ लिखा है। और तब तो आधुनिक दार्शनिक और विद्वान भी इन बातों से सहमत होने लगे हैं। जिन विषयों पर अनेकों मत हैं वे हैं- जन्म-मृत्यु, आत्मा-परमात्मा, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नर्क, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, भूत-प्रेत, त्रैलोक अर्थात तीन लोकों की धारणा, अवतारवाद, अमृत, भाग्य, कर्म आदि के विषय में विभिन्न प्रकार के उत्तर दिये गये हैं।

असत्य का आवरण हटाकर सत्य का उद्‌घाटन करना ही संतों और सद्‌गुरुओं का कार्य रहा है। यही महत कार्य सद्‌गुरु औशो शैलेन्द्र जी ने भी किया। एक उदाहरण देखिये- 'अमृत कोका कोला की तरह कोई कोल्डड्रिंक नहीं है। बल्कि इसमें एक शीतलता और शांति का अहसास होता है, एक स्थिरता का, अक्षोभ का, अकंप का, शाश्वत्ता का, स्वयं के केन्द्र में स्थिर होने का बोध होता है।'

ऐसी ही ढेरों परिभाषाएं आपको इस पुस्तक में मिलेंगी- रोचक ढंग से प्रस्तुत। पढ़ना शुरू कीजिये और जानिये-जन्म से पहले क्या था, मृत्यु के बाद क्या होगा, कहां है त्रिलोक, कौन चला रहा इस संसार की व्यवस्था को? कैसे होते हैं यमदूत? क्या है जीवन का लक्ष्य; क्या है आउट ऑफ बॉडी एक्सपीरिएंस, कैसे लगती है समाधि; क्या है माया, क्या है सत्य?

यह पुस्तक एक आमंत्रण है- आइए, छः दिनों के लिए, सम्मोहन प्रज्ञा एवं महाजीवन प्रज्ञा कार्यक्रम में भाग लेकर स्वयं अनुभव कीजिए कि जीवन-मृत्यु का सत्य क्या है? मानिए मत, जानिए।

-मस्तो बाबा

अनुक्रम

1

मौत के बाद, जन्म से पहले

(प्रथम भाग)

मा ओशो कल्याणी ने गुरु पूर्णिमा की सुबह सद्गुरु शैलेन्द्र जी से एक अनूठा साक्षात्कार लिया जो टी.वी. चैनल के लिए रिकार्ड किया गया। इस इंटरव्यू में मुख्यरूप से प्रश्नों का केन्द्रीय विषय था- मृत्यु के पश्चात् और जन्म के पूर्व क्या होता है? लीजिए पढिए इस रोचक वार्तालाप की पहली किस्त-

1. सद्गुरु देव, भारतीय संत लोक-परलोक की बात करते हैं। हमारे शास्त्रों में तीन लोकों की चर्चा भी आती है। क्या हमारे इस लौकिक जीवन के अलावा किसी अन्य लोक का अस्तित्व भी है?

सुनो, संत धरमदास क्या कहते हैं–

'कौल करार बिसारि बावरी, मान मनी मन माना।
आरि नहिं दुनियाँ में रहना, बहुरि उहाँई जाना।।'

अर्थात् 'अरी पगली जीवात्मा, वहाँ से जो कौल करार करके आई थी, वह वायदा भूल गई। यहाँ सदा तो रहना नहीं, अंतत: फिर वहीं जाना है।'

अब तो आधुनिक पश्चिमी परामनोवैज्ञानिक, हिप्नोथेरेपिस्ट भी इस बात पर सहमत हैं कि हम कहीं से आए और हमें वहीं लौट जाना है।

डॉ. माइकेल न्यूटन की नवीनतम खोजें कहती हैं कि हमारा वास्तविक घर कहीं और है। विशेषरूप से उनकी दो किताबें 'जरनी ऑफ सोल्स' और 'डेस्टिनी ऑफ सोल्स' इतर-लोक को सिद्ध करती हैं। बुद्ध-महावीर ने जिसे 'जाति स्मरण' नाम दिया था, उस तरह की प्रक्रिया को वे 'लाइफ रिग्रेसन' पुकारते हैं। अनेक सम्मोहनविदों ने गहन हिप्नोसिस की दशा में ले जाकर सैकड़ों लोगों से उनके पिछले जन्मों की बातें पूछीं। दो जन्मों के मध्य में क्या हुआ, इसकी स्मृति को जगाया। अद्‌भुत तथ्यों का उद्‌घाटन हुआ है।

प्राचीन पूर्वीय ऋषियों की खोजें, तथा आधुनिक पश्चिमी खोजें मिलाकर देखने से एक अनूठा चित्र उभरता है। दोनों की आधी-अधूरी कहानी जोड़ने से जीवन-मृत्यु की कथा का 'संपूर्ण रहस्य' उजागर होता है; और तब ओशो के बहुतेरे वचनों का अर्थ समझना भी आसान हो जाता है।

विहंगम दृष्टि से देखने पर इस लोक को अगर हम मर्त्यलोक नाम दें तो परलोक में दो तल कहे जा सकते हैं- आत्म लोक और अमर लोक। अन्य शब्दों में, इस दैहिक जगत में भौतिक-जीवन, विदेही या अ-देही जगत में महाजीवन एवं अ-मनी जगत में परमजीवन होता है।

2. इन दो लोकों का स्थान हमारी नीहारिका, यानी इस गैलेक्सी के बाहर कहीं हैं? कितनी दूर?

दूर-पास का सवाल नहीं, तीनों का समानांतर अस्तित्व है- थ्री डायमेंशनल है यह त्रिलोक। जैसे एक ही स्थान में ध्वनि, प्रकाश और सुगंध; बगैर एक-दूजे को स्पर्श किए युगपतरूप से मौजूद हो सकते हैं, साइमल्टेनियशली प्रजेंट। ठीक वैसे ही तीनों लोक अभी और यहीं हैं। हां, समय का चौथा आयाम पार्थिव जगत

में और दोनों सूक्ष्म लोकों में अलग-अलग ढंग का है। हमारे करोड़ों साल संभवत: वहाँ के कुछ क्षणों के तुल्य हैं। जैसे जागृति, स्वप्न व सुषुप्ति में समय की अनुभूति भिन्न-भिन्न होती है, वैसे ही तीनों लोकों के स्थान (पोजिशन इन स्पेश) एक होने पर भी समय के आयाम बिल्कुल अलग हैं।

3. **हमारे ऋषि इस दुनिया को सुसराल और उस जगत को बाबुल का घर बतलाते हैं। कुछ अन्य संत इसकी विपरीत उपमा भी देते हैं। इन काव्यात्मक प्रतीकों में क्या इशारा छिपा है?**

संत धरमदास ने कहा है-

'पिया बिना मोहिं नीक न लागें गाँव॥'

यानी प्रीतम के बिना यह जगह अच्छी नहीं लगती। जैसे पति कहीं नौकरी करने बाहर गया हो, सदा बाहर ही रहता हो; तो ससुराल में पत्नी का मन न लगे।

धरमदास के ऊपर ओशो ने दो प्रवचनमालाएं दी हैं– 'जस पनिहार धरे सिर गागर' तथा 'का सौवे दिन रैन'। 'प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया' में दूलनदास के वचनों पर भी परमगुरु ओशो ने अपनी दृष्टि प्रस्तुत की है। दूलनदास जी कहते हैं–

'नीक न लागै बिनु भजन सिंगरवा।
का कहि आयौ हियां बरत्यो नाहीं,
भूलि गयल तोरा कौल कररवा॥'

ध्यान-भजन आदि के बिना शृंगार सुहाता नहीं। मैं वहाँ क्या कहकर आई थी, और यहाँ आकर सब कसमे-वादे भूल गई। वह आत्मलोक जीवात्मा का मायका है जहाँ माता-पिता तुल्य सलाह देने वाले गाइड्स हैं। यह धरती ससुराल है मगर यहाँ असली प्रीतम नहीं रहता। हम खोजते हैं उसे, मगर वह मिलता नहीं। असली ससुराल वाला घर अमरलोक है जहाँ जीवात्मा-परमात्मा के संग सहवास करती है।

दोनों प्रकार के प्रतीक अर्थपूर्ण हैं। एक दृष्टिकोण से देखो तो पृथ्वी नकली सुसराल है। दूसरे नजरिये से अमरलोक असली सुसराल है।

4. **क्या इन तीनों लोकों में एक सरीखा का सुख-दुख होता है?**

सुख-दुख रूपी उत्तेजनाएं हमारी द्वंद्वात्मक भौतिक दुनिया की अनुभूतियां हैं। दोनों के पार शांति की निरुत्तेजित दशा महाजीवन में, 'एस्ट्रल वर्ल्ड' या 'स्प्रिट

वर्ल्ड' में होती है। परम जीवन के अनुभव को आनंद, सदा-सुख, महासुख, शाश्वत सुख पुकारा जा सकता है।

संत गुलाल की वाणी को ओशो ने 'झरत दसहुं दिस मोती' में समझाया है। गुलाल साहब फर्माते हैं–

'सदा सुख निज जानहु राम। कह गुलाल न तौ जमपुरधाम।।'

5. **स्वर्ग नरक की धारणा में कितनी सचाई है? स्वर्ग तथा बैकुंठधाम में क्या अंतर है? वहाँ भावनाएं किस तरह की होती हैं?**

वास्तव में नर्क कहीं नहीं है। या चाहो तो इसी लोक को नर्क कह लो जहाँ दुख घटित होता है। सुख का अहसास दुख की पृष्टभूमि में होता है, इसलिए इस द्वंद्वलोक से गुजरना भी प्रशिक्षण का अनिवार्य अंग है। भूलोक व नर्क पर्यायवाची हैं। आत्मलोक स्वर्ग एवं अमरलोक बैकुंठधाम है। इस लोक में सद्‌भावनाएं+दुर्भावनाएं, जबकि स्वर्ग में केवल सद्‌भावनाएं होती हैं। बैकुंठ भावातीत अवस्था है।

6. **देवलोक, मोक्ष, निर्वाण, बैकुंठ आदि समानार्थी शब्द हैं या इनमें भेद है?**

देवलोक, परलोक, धर्मलोक, यमलोक, जमपुरधाम आदि पर्यायवाची अर्थों में प्रयुक्त किए जाते हैं। यमलोक व जमपुरधाम में निगेटिव कनोटेशन छिपा है, इसलिए उनका प्रयोग न करें तो बेहतर! द्वैतलोक को मनुजलोक या इहलोक भी कहते हैं। विष्णुलोक, भागवतलोक, निर्वाणलोक एवं मोक्ष को समानार्थी समझें। शब्द को न पकड़ें, उसके भावार्थ का ख्याल रखें। नामकरण से क्या फर्क पड़ता है! सब नाम कामचलाऊ हैं।

7. **इन तीनों अवस्थाओं में मन की क्या स्थिति होती है?**

मृण्मय लोक में तन,मन,चेतन का संयोग होता है। विदेही होने पर सूक्ष्मलोक में केवल मन, चेतन रह जाते हैं। चिन्मय लोक या परमधाम में मन भी समाप्त हो जाता है, सिर्फ चेतन शेष रह जाता। इसीलिए तो 'अ-मन' की इस दशा में

चैनो-अमन है। सामान्य मृत्यु को हम 'देहांत' कहते हैं तो परममृत्यु को 'मनांत' कहना चाहिए।

8. **अहंकार की क्या स्थिति होती है? तथा यह भी बताएं कि बंधन और दुख में क्या संबंध है?**

इस जगत में अहंकार है-'स्थूल मैं' के रूप में। तन-मन से तादात्म्य के रूप में। पुरुषों में मन के संग एवं स्त्रियों में तन के संग अधिक मात्रा में तादात्म्य होता है। प्रतिशत का भेद रहता है। देहांत होने पर अस्मिता- 'सूक्ष्म मैं-भावना' बच जाती है। मनांत होने पर केवल अस्तित्व रह जाता है- 'न मैं, न तू'; कोई तादात्म्य नहीं। बंधन का अर्थ तादात्म्य समझना।

बंधन व दुख के संबंध में सुनें-

कैवल्य उपनिषद के प्रथम प्रवचन में ओशो कहते हैं-'अगर हम सारे दुखों का निचोड़ निकालें, तो पाएंगे परतंत्रता। और सारे आनंद का सार, मूल जो है, वह है स्वतंत्रता। इस परम स्वतंत्रता को निर्वाण कहा है, क्योंकि वहां मैं भी नहीं, मेरा होना भी मिट जाता है- बस अस्तित्व रह जाता है।'

9. **त्रिलोक की व्यवस्था कैसे चल रही है? यदि कोई सर्वशक्तिमान स्त्रष्टा प्रभु चला रहा है, तब हम स्वतंत्र कैसे हो सकते हैं?**

स्वतंत्रता का सामान्य अर्थ 'दूसरे से मुक्ति' है। स्वतंत्रता का धार्मिक अर्थ 'स्वयं से मुक्ति', यानी अहंकार व अस्मिता से छुटकारा है। पश्चिमी सम्मोहनविदों की खोजें स्पष्ट करती हैं कि ईसाई मान्यता के मुताबिक कोई 'ओमनीपोटेंट गॉड' जगत-संचालन नहीं कर रहा। न तो कोई व्यक्तिवाची ईश्वर है, न ही कोई नरक का इंचार्ज शैतान है। ओशो के अनुसार स्त्रष्टा नहीं है, सृजनशीलता है। भगवान नहीं, भगवत्ता है। प्रकृति की सुनियोजित व्यवस्था नियम से चल रही है। बुद्ध जिसे धम्म कहते हैं-एस धम्मो सनंतनो! लाओत्से जिस महानियम को ताओ पुकारता है, उसी से सब कुछ स्वयंमेव चल रहा है। मगर स्मरण रहे, कोई बंधन नहीं है। लाओत्से की किताब 'ताओ तेह किंग' में बेस्ट सिस्टम मैनेजमेंट का वर्णन इस प्रकार है कि श्रेष्ठ

शासन वही है जहाँ शासक का पता ही न चले। 'ताओ उपनिषद' में ओशो ने इस स्वतंत्रतापूर्ण नियम को बड़े प्यारे अंदाज में समझाया है।

अन्य शब्दावली में ऐसा समझें कि परतंत्रता-स्वतंत्रता का द्वन्द्व दैहिक जगत में है। परस्पर-तंत्रता यानी 'इंटर डिपेन्डैंस' की संस्कृति विदेही जगत में है। परम स्वतंत्रता या पूर्ण-मुक्ति, अ-मनी जगत यानी मोक्ष में है। वासना जन्य प्रेम-घृणा का द्वैत इहलोक में है। मैत्री, भाईचारा, सहयोग आत्मलोक में है। करुणा मोक्ष में है।

10. **ईश्वर की सत्ता को इंकार करने वाला जैन धर्म भी परमात्मा शब्द का प्रयोग करता है। उसका क्या तात्पर्य है?**

आत्मा ही परमात्मा हो जाती है- ऐसा महावीर कहते हैं। 'जिन सूत्र' एवं 'महावीर वाणी' प्रवचनमालाओं में ओशो आत्मा की तीन अवस्थाएं बताते हैं—पहली, संसार की कामनाओं में ग्रस्त बहिर्मुखी चेतना बहिर्आत्मा है। दूसरी, ध्यान, समाधि, साधना में उत्सुक अंतर्मुखी चेतना अंतर्आत्मा है। तीसरी, परम-आत्मा चेतना की वह अवस्था है जब वह न तो अंतर्यात्रा कर रही न ही बहिर्यात्रा। सारी यात्राएं, गतियां समाप्त हो गईं। परम विश्राम को उपलब्ध होकर वह स्थित-प्रज्ञ हो गई। महावीर के अनुसार अनंत आत्माएं हैं, अनंत परमात्मा हैं, और हो सकते हैं। विकास की एक प्रक्रिया चल रही है।

न्यूटन की खोजें भी इसी ओर संकेत करती हैं। वे ईसाई की जगह जैन व बौद्ध धारणाओं को ज्यादा सही सिद्ध करती हैं। ईसाईयत के मुताबिक ईश्वर से स्रष्टि का आरंभ है- वह प्रथम सोपान है। बीज है। जैनों के अनुसार परमात्मा विकास प्रक्रिया का अंतिम सोपान है। शिखर है। पराकाष्टा है। फूल है।

11. **बौद्ध धर्म आत्मा को भी इंकार करता है। ऐसा क्यों?**

निगेटिव शब्दावली पसंद करने वाले गौतम बुद्ध उसे अनात्मा कहते हैं- शून्य। आत्मा आकाश जैसी, है भी और नहीं भी है। दोनों बातें उस पर लागू होती हैं। 'एस धम्मो सनंतनो' में ओशो समझाते हैं कि पूर्ण शब्द में प्रलोभन छिपा है। पूर्णता की बात सुनकर परफैक्शनिस्ट लोभी आकर्षित हो जाएंगे। अत: बुद्ध पॉजीटिव शब्दों का प्रयोग करने से बचते हैं ताकि महत्वाकांक्षी लोग व्यर्थ ही पास

न आएं। वे साधना कर न सकेंगे। हम नए शब्द भी गढ़ सकते हैं—आत्मा को बीजात्मा, पोटेंशियल या अनमेनिफेस्ट चेतना कहा जा सकता है। देहधारी जीवात्मा प्रगट वृक्ष की भांति है जो मेनिफेस्ट हो गई। मुक्तात्मा फूल की सुवास के समान है जो फिर अदृश्य होकर आकाश में खो गई।

12. **क्या मृत्यु बहुत पीड़ादायी होती है?**

मौत पीड़ादायी नहीं, बल्कि कष्टनिवारक हितैषी है। प्रकृति बड़ी करुणावान 'सर्जन' है। 'अनीस्थीसिया' के समान हालत में प्रकृति देह से आत्मा को निकालने का 'ऑपरेशन' करती है। मौत के पहले शरीर में रोग की वजह से जो तकलीफें हो रही थीं वे सब खत्म हो जाती हैं। सारी भौतिक जरूरतें समाप्त हो जाती हैं। देह के दुखदायी बंधन मिट जाते हैं। अगर किसी को पीड़ा होती है तो मौत के कारण नहीं, बल्कि जीवन को व्यर्थ गंवाया, इसका पश्चात्ताप होता है।

13. **मरने पर किस प्रकार आत्मा अपने असली घर वापस जाती है?**

सर्वप्रथम तो मृतात्मा अपने परिवारजनों के दुख को कम करने की कोशिश करती है। उन्हें सांत्वना देना चाहती है। भाषा का प्रयोग तो नहीं कर सकती, अतः परोक्ष ढंगों से बताना चाहती है कि मैं आनद में हूं। किंतु दुख में लोग सिकुड़कर अगृहणशील हो जाते हैं। पड़ोसी व रिश्तेदार उन्हें और ज्यादा दुखी करने के प्रयास में रहते हैं।

प्रियजनों का दुख उसको रोकता है। एक अंधेरी सुरंग में से गुजरने का आकर्षण उसे दूसरी ओर खींचता है। सुरंग के उस पार शीतल प्रकाश है, उसमें चुंबक जैसा असर है। संत पलटू कहते हैं—'उल्टा कुआं गगन में, जिस में जलै चिराग।' उस 'डार्क टनल' से यात्रा करके आत्मा इस लोक से उस लोक में पहुंच जाती है। परलोक की कशिश, खिंचाव, गुरुत्वाकर्षण के समान बल होता है जो सूक्ष्म शरीर पर कार्य करता है।

14. **मरने पर परिवारजनों को क्या करना चाहिए?**

प्रेमपूर्ण विदाई देनी चाहिए तो वह शीघ्र अगली यात्रा पर निकल जाती है। संत

कबीर साहब के शिष्य उत्सव शैली में अंतिम विदा देते हैं। कबीर ने कहा है—

जिस मरने से जग डरै, मेरो मन आनंद।
कब मरिहों कब भेंटिहों, पूरण परमानंद॥

ओशो ने भी मृत्यु में उत्सव की शिक्षा दी। नाचते-गाते, संगीत बजाते अलविदा कहो। माना, किसी के जाने पर अफसोस होगा; अवश्य रोना, अश्रुओं को बहने देना, मगर उसे रोकने की कामना से मत भरना। कहना—जाओ, अपने गंतव्य की ओर जाओ। तुम्हारी प्रीतिपूर्ण स्मृति आएगी। किंतु तुम खुशी-खुशी प्रेमपूर्वक जाओ। वहाँ के लोग तुम्हारे स्वागत में खड़े होंगे। तिब्बत में उन लोगों ने इसका पूरा विज्ञान खोजा है—बारदो ऑफ डाईंग।

15. **भूत-प्रेत आदि का अस्तित्व होता है या नहीं?**

कुछ आत्माएं धरती से जल्दी नहीं जाने का चुनाव करती हैं। हम उन्हें भूत-प्रेत की संज्ञा देते हैं। कुछ दिन, माह या सालों तक रुकना संभव है। आत्मा को आने-जाने में विलंब की स्वतंत्रता है। प्राय: ये चेतनाएं अति मोहग्रस्त या अधूरी वासनाओं से भरी होती हैं

16. **कोई भूत-प्रेत न बने इसके लिए हम देहधारी लोग क्या मदद कर सकते हैं?**

अटकने का मुख्य कारण व्यक्ति से, संपत्ति से, जमीन-जायदाद से अति-मोह, अधूरी वासना, अथवा किसी से द्वेषभाव होता है। इन वृत्तियों से मुक्त होने के लिए लोगों को ध्यान साधना हेतु प्रेरित करें। ओशोधारा के चौथे तल के कार्यक्रम 'अमृत समाधि' में 'अमृत अभियान' सिखाया जाता है, जिसमें आगे की यात्रा हेतु सुझाव दिए जाते हैं। तिब्बत में इस प्रकार की पद्धतियां बहुत प्रचलित रही हैं कि किस प्रकार मरणासन्न व्यक्ति को आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करके भेजा जाए। दाह संस्कार भी उपयोगी है। ईसाई-मुस्लिम समाजों में जहाँ मुर्दे को कब्र में दफन करने की परंपरा है वहाँ भूत-प्रेत ज्यादा होते हैं। भौतिक शरीर के मर जाने के बाद भी आत्मा को इस बात का अहसास नहीं होता कि मैं मर चुका हूं। जलाने

पर शीघ्र ख्याल आ जाता है कि खेल खत्म हुआ, अब अपने घर चला जाए!

17. **क्या मरने पर यमदूत लेने आते हैं?**

नहीं। भैंसे पर सवार यमराज या यमदूत घसीटकर नहीं ले जाते। बल्कि हमारे गाइड्स या एल्डर्स आते हैं जो हमें स्वागतपूर्ण माहौल में प्रेम से ले जाते हैं। ये उन्नत आत्माएं हमारे हितैषी मित्रों या बड़े भाई-बहनों के समान होती हैं। हमारे पूर्वज या गुरु लेने आते हैं। बड़े ही सत्कार से उस लोक में प्रवेश मिलता है।

'डार्क टनल' से गुजरने के पश्चात दिव्य आलोक में स्नान कराया जाता है। वहाँ ओंकार की गूंजती ध्वनि अपना 'हीलिंग इफैक्ट' दिखाती है। संगीत व प्रकाश मिलकर आत्मा की कलुषता धो डालते हैं। जिंदगी में लगे घाव जैसे साफ किए जाते हों। इसे कुदरत की रिपेयरिंग वर्कशॉप समझें। सारी प्रक्रिया आत्मा के विकास में सहयोगी होती है। इसे चिकित्सा के समान करुणामय प्रावधान समझें। यमदूत शब्द का मूल भावार्थ तो धर्मदूत है। उस शब्द में करुणा भावना नीहित है। किंतु कालांतर में इसका भयावह, डरावना अर्थ हो गया।

18. **क्या ऐसा सभी के संग होता है?**

विकसित आत्माओं को लेने कोई नहीं आता, क्योंकि उन्हें जरूरत नहीं रहती। रिपेयरिंग की आवश्यकता भी नहीं रहती। संत रविदास जी कहते हैं-

'तुमरे भजन कटहि जम फांसा। भगति हेत गावै रविदासा।।'

रविदास के वचनों पर ओशो की प्रवचनमाला का नाम है- 'मन ही पूजा मन ही धूप'। इसी प्रकार अर्जुन देव जी कहते हैं-

'तेरे सेवक कउ भउ किछु नाही, जम नहीं आवै नेरे।।'

जम, धर्म का अपभ्रंश है। धर्मराज यानी सहायक गाइड्स।

जैसे के.जी. स्कूल के छोटे बच्चे को लेने उसके माता-पिता आते हैं। फिर प्राइमरी स्कूल के बच्चे को लेने ड्राइवर को भेज देते हैं। कालेज के विद्यार्थी खुद-ब-खुद घर आ जाते हैं। किसी को ले जाने की आवश्यकता नहीं रहती। ठीक

इसी प्रकार अविकसित आत्माओं के लिए अति-प्रेमल ढंग से, वात्सल्य भाव से ले जाते हैं।

19. **मरने पर सब समाप्त हो जाता है, तो इस जिंदगी का लक्ष्य क्या है?**
सब नहीं, केवल शरीर समाप्त होता है। मन निरंतर विकासमान रहता है। जिंदगी पाठशाला है, यहाँ तीन प्रकार से जागरण के सबक मिलते हैं। जिंदगी की घटनाएं जगाने के लिए हैं। फिर मौत चौंकाती है। और जो जीवन-मृत्यु दोनों से नहीं चेत पाते, उन्हें सद्‌गुरु के वचन जागृत करते हैं। अ-सत यानी माया में भूले व्यक्ति को झकझोरते हैं, सत-नाम का ज्ञान कराते हैं। वही जिंदगी का लक्ष्य है। संत जगजीवन साहब कहते हैं-

'आइ जग काहे मन बौराना।
जौन कौल करि ह्वाँ ते आयो, समुझि देखु वह ज्ञाना।।
तकि मायाबस भूलि परेसि तैं, सतनाम नहिं जाना।'

जगजीवन जी के अमर-गीतों पर ओशो ने प्रकाश डाला है-'अरी मैं तो नाम के रंग छकी' तथा 'नाम सुमिर मन बावरे' नामक पुस्तकों में। दोनों ही शीर्षकों से नाम की महिमा प्रगट होती है। नाम को जानकर ही प्राण तृप्त होते हैं, छकते हैं। नाम स्मरण के बिना मन बावरा ही है, पागल है। नाम में डूबकर ही स्वस्थ होता है। अत: इसी को जीवन का ध्येय जानें।

20. **सद्‌गुरु की आत्मा तो विकसित अवस्था प्राप्त कर चुकी, वह क्यों धरती पर जन्मती है?**

करुणावश प्रभु की चाकरी करने आती है। संत नामदेव गाते हैं-

हले यारां, हले यारा, खसिखबरी।
बलि बलि जांउ हउ बलि बलि जाउं।
नीकी तेरी बेगारी आले तेरा नाउ।।

यह बेगारी शब्द बड़ा प्यारा है। बेगारी यानी जिसके बदले में कुछ न मिले। इस काम को वे खुशखबरी पुकारते हैं, सौभाग्य है कि परमात्मा का कार्य करने

को मिला। हम कामनावश आते हैं, कुछ पाने के लिए। सद्‌गुरु दयावश आते हैं, कुछ देने के लिए। भटके हुओं को राह दिखलाने के लिए। अगर आपको नामदेव का शब्द 'बेगारी' न जमता हो तो ओशो का शब्द खेल या लीला' चुन लो। 'पतंजलि योग सूत्र' के पंद्रहवें प्रवचन में ओशो समझाते हैं कि वे गुरुओं के गुरु 'मास्टर ऑफ दि मास्टर्स' अति उन्नत आत्माएं होती हैं, जो स्वयं ओंकार स्वरूप हो चुकीं। उन्हें भगवान पुकारा जा सकता है। देहधारण करके वे गुरु का कार्य करते हैं, और विदेही अवस्था में धरतीवासी गुरुओं का मार्ग दर्शन करती हैं।

2
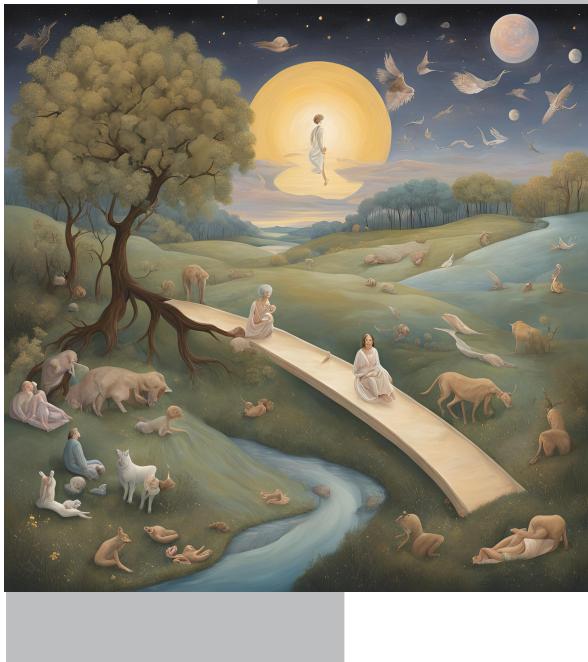
मौत के बाद, जन्म से पहले

(द्वितीय भाग)

21. **सद्‌गुरु शैलेन्द्र जी, गुरु तो मुक्तात्मा है फिर बंधन में कैसे पड़ जाता है?**

ऐसा समझो कि परमलोक में मूलचैतन्य की जड़ें रहती हैं, महालोक में शाखाएं फूटती हैं, इस लोक में प्रशाखाएं, डंठल, पत्ते, फल-फूल आदि लगते हैं। एक फूल के खिलने या कुम्हलाने-झड़ने से जड़ को कुछ अंतर नहीं पड़ता। किसी ने फूल तोड़कर गुलदस्ते में सजा दिया तो भी वृक्ष की जड़ ज्यों की त्यों रहती है। हमेशा चेतना का छोटा सा अंश ही प्रगट होकर, देह में आता है। मूल सुरक्षित, स्वतंत्र ही रहता है। दूसरे उदाहरण से समझें किसी कागज की फोटोकापी, झेरॉक्स निकालकर आपने अलमारी में बंद कर दी तो मूल प्रति पर बंधन नहीं पड़ जाता। गुलाब के पौधे की एक छोटी सी डाल तोड़कर कहीं कलम लगा देने से मूल पौधा

ज्यों का त्यों रहता है। आजकल प्राणियों के भी क्लोन्स बनने लगे। जल्दी ही इंसान के क्लोन बनने लगेंगे। क्लोन को जेल में बंद करने से 'ओरिजिनल' आदमी बंद नहीं हो जाएगा, वह मुक्त ही रहेगा। थोड़ा जटिल है हमें कल्पना करना।

22. **क्या हिंदुओं के अवतारवाद की धारणा से आधुनिक परामनोविज्ञान सहमत है?**

हां, पूर्णत:। उन्होंने नई बात जो खोजी है वह महत्वपूर्ण है कि आत्मा का एक अंश ही जमीन पर आता है। हम जिन्हें विराट आत्माएं कहते हैं– महात्मा, ईश्वर–पुत्र, भगवान, पैगंबर, तीर्थंकर; उनका और भी लघु अंश अवतरित होता है। सामान्य व्यक्ति की तुलना में कम प्रतिशत धरती पर आता है। जैसे किसी बड़े वृक्ष की कलम लगाएं तो उसका बहुत छोटा सा हिस्सा ही पर्याप्त होगा। यद्यपि सारी कलमें बराबर साइज की होंगी, मगर छोटे पौधे का दस प्रतिशत भाग विराट वृक्ष के एक प्रतिशत भाग के बराबर होगा।

23. **क्या एक आत्मा दो जगह जन्म सकती हैं?**

हां। कलम और क्लोन के उदाहरण से समझना आसान होगा। एक शाखा में कई पत्ते संभव हैं। एक व्यक्ति का खून दो–चार लोगों को ट्रांसफ्यूज किया जा सकता है। अभी थोड़े दिन पहले ही नेत्र चिकित्सकों ने एक टेकनीक ईजाद की है जिसके द्वारा एक आदमी द्वारा डोनेट की गई आंख तीन लोगों को लगाई जा सकती हैं। भविष्य में संभव है एक अंग से अनेक अंगों का अथवा एक देह से अनेक देहों का निर्माण किया जा सके।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं कि पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। आत्मा के खंड नहीं होते, वह अखंड है; फिर भी एक चांद के जैसे कई सरोवरों में अनेक प्रतिबिंब बनते हैं वैसे ही दो या अधिक शरीरों में एक साथ जन्म संभव है। इसके बावजूद भी मूल जहाँ की तहाँ रहता है।

2

24. **जन्मने के पश्चात भी क्या कोई उन्नत आत्मा लोगों के सपनों में आकर उन्हें मार्गदर्शन दे सकती है?**

हां। क्योंकि मूल चैतन्य तो जहाँ की तहाँ है। अवतार लेने के बाद भी वहाँ सूक्ष्म लोक में मौजूद है, और वह भी सक्रिय रहता है। अपने शिष्यों के, प्रेमियों के विजन्स में दर्शन देना, संदेश देना संभव है। देहधारी गुरु को मालूम भी नहीं चलेगा कि उसका मूल चैतन्य इस प्रकार कहीं मार्गदर्शन दे रहा है। जैसे कलम लगाए गए शिशु-पौधे को पता नहीं होगा कि उसका पितृ-पौधा क्या कर रहा है!

25. **इस लोक से प्रस्थान के बाद फिर क्या होता है?**

अंधेरी सुरंग 'टनल' से गुजरने के पश्चात ओंकार-आलोक में स्नान होता है। नाद-नूर मूलतत्व हैं जिनसे हमारे सूक्ष्म शरीर निर्मित हैं। उसी में डूबकर ताजगी आ जाती है। उपनिषदों में सबसे संक्षिप्त ग्रंथ है– आत्मपूजा उपनिषद, मात्र सत्रह छोटी-छोटी पंक्तियों का संग्रह। इन अनूठे सूत्रों की व्याख्या ओशो ने की है 'दि अल्टीमेट एल्केमी' नामक प्रवचनमाला में। 'प्रकाश में स्नान' पर ऋषि का खास जोर है। ओशोधारा में यह विधि 'निरति समाधि' में सिखाई जाती है।
संत भगतीदास कहते हैं-

'गुरु पइयाँ पड़ो नाम के ला दीना।
जनम जनम के सुतल मनुआ शबद बान से जगा दीना।।
मोरे उरन करोध अति बाढ़े, इमरित घड़ा पिला दीना।।
भगतीदास कहे कर जोरी, जमुआ का अदल छुड़ा दीना।।'

अर्थात गुरु ने नाम का प्रकाश दिखा दिया, सोते मन को जगा दिया; क्रोध आदि जहर से भरे मुझ शिष्य को नाम-अमृत पिला दिया एवं यम के जाल से छुड़ा दिया। जो साधक जीवन में ही ओंकार-आलोक में डूबकर समाधि-रसपान करते रहते हैं उन्हें इस लोक से प्रस्थान करना और भी जाना-पहचाना सा प्रतीत होता है। समाधि का महत्व न केवल जिंदगी को शांतिपूर्ण बनाने के लिए बल्कि मृत्यु के पश्चात भी आनंद-वृद्धि में सहयोगी है।

26. **इस लोक से प्रस्थान के बाद आत्मा को कर्मानुसार दंड या पुरुस्कार मिलता होगा?**

नहीं। ये धर्म के ठेकेदारों द्वारा फैलाई गई अफवाहें हैं। संक्रमण काल यानी 'ट्रांजिशन फेज' में 'रिपेयरिंग वर्क' होता है। जिंदगी की प्रमुख घटनाओं की झांकी दिखाई जाती है, समझ जगाने के लिए। कोई दंड या पुरुस्कार देने वाला न्यायाधीस नहीं बैठा है वहां। कर्मों का लेखा-जोखा रखने वाला महा-क्लर्क नहीं है वहां। जगजीवन साहब के शब्दों में-

'बौरे, जामा पहिरि न जाना।
कोऊ फूटि टूटि गारत भा, कोउ पहुँचा अस्थाना॥'

अर्थात पागलो, तुम्हें तन रूपी वस्त्र धारण करना नहीं आता, इसलिए टूटी-फूटी हालत में वहाँ 'स्प्रिट वर्ल्ड' में पहुंचते हो। कोई प्रज्ञावान ही सही-सलामत अपने ठीक स्थान पर यानी परमधाम में पहुंचता है। कुदरती रिपेयर-वर्कशॉप में अपनी भूल-सुधार के अवसर मिलते हैं, ताकि आगे जागृति की मात्रा और अधिक प्रगाढ़ हो सके। इसे दंड तो कतई नहीं कहा जा सकता। अपनी विगत जिंदगी की फिल्म देखने को मिलती है—शिक्षाप्रद कहानी के रूप में।

27. **यानी आप कह रहे हैं कि कहीं नरक नहीं है। सभी स्वर्गीय होते हैं। फिर वहाँ उनका आपस में क्या नाता रहता है?**

हां, सभी स्वर्गीय होते हैं, यहाँ तक कि राजनेता और अपराधी भी। उसका कारण समझो—

मैंने सुना है कि अस्सी वर्ष की आयु में नसरुद्दीन मरा। परलोक के गेटकीपर ने उसका इंटरव्यू लिया। पूछा—शादीशुदा थे? नसरुद्दीन बोला—हां, इस्लाम के मुताबिक चार बार निकाह किया था। गेटकीपर ने कहा—सीधे बहिश्त में जाओ, तुम जहन्नुम तो काफी साल भुगत चुके हो।

इसी वजह से सभी स्वर्गीय होते हैं; राजनेता, अपराधी, पापी भी। बेचारे नरक तो धरती पर भोग ही चुके।

महाजीवन में 3 से लेकर 25 सूक्ष्म शरीर, औसत 15 के समूह में साथ रहते हैं। ये गहन मित्र, 'सोलमेट्स' होते हैं। इस प्रकार के समूह या 'क्लसटर्स' में रहने वाले

प्रायः साथ ही जन्म लेते हैं– अक्सर आसपास, एक ही परिवार में, पड़ोस में, गांव में। धरती पर आकर ये लोग फिर एक–दूसरे को खोज लेते हैं। बहुत से सम विचार और भावदशा वाले 'क्लसटर्स' एक 'कालोनी' जैसी बनाते हैं। और बड़े पैमाने पर नगर, महानगर, विश्व आदि जैसी व्यवस्था है। बस राष्ट्र जैसी कोई राजनीतिक इकाई नहीं रहती। क्योंकि वहाँ सभी प्रेमाकर्षण की वजह से संग–साथ हैं।

पृथ्वी पर लड़ाई–झगड़े के जो कारण हैं, वे कारण ही वहाँ नहीं रहते। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक नामों पर लड़ने का आधार ही नहीं है। किसी को किसी चीज पर आधिपत्य नहीं जमाना है। वहाँ कोई चीज ही नहीं है। कोई वर्ग–भेद नहीं हैं। धरती पर संयोगवशात बन गए पति–पत्नी या बाप–बेटे लड़ते रहते हैं क्योंकि उनकी विचारधाराएं नहीं मिलतीं। वहाँ उनकी भेंट ही नहीं होगी जिनसे मानसिक मेल नहीं है। सिर्फ हार्दिक रूप से आत्मीयता वाले सूक्ष्म शरीर ही निकट रहेंगे।

28. **क्या एक ग्रह की आत्मा उसी ग्रह पर और एक देश की आत्मा उसी देश में जन्मती है?**

प्रेमाकर्षण की वजह से लगभग पृथ्वीवासी आत्माएं 99.9% पृथ्वी पर ही वापस आती हैं–अपने ही देश में, संस्कृति में, अक्सर उसी परिवार में जन्मतीं हैं। उन्हें लगाव है इस ग्रह से, इसीलिए तो उन्होंने पहली बार भी इसे चुना था। अधिकांश भारतीय आत्माएं भारत में पैदा होंगी। यदा–कदा कोई व्यक्ति जिसके मन में भारत की संस्कृति से चिढ़ पैदा हो गई है, जो जिंदगी भर अमेरिका जाने की कोशिश करता रहा मगर वीजा न मिलने की वजह से न जा पाया, वह अगला जन्म अमेरिका में लेगा। अब तो वीजा की समस्या खत्म हो गई। न पासपोर्ट चाहिए, न टिकिट का किराया।

29. **परिवार का चुनाव कौन करता है?**

माता–पिता, भाई–बहन, अन्य परिवारजन का चुनाव स्वयं के द्वारा ही होता है। शादी भी ज्यादातर नदी–नाव संयोग नहीं है, दुर्घटनावश नहीं होती। सोलमेट्स– गहरे मित्र अपने प्रेमपात्रों को खोज लेते हैं। यदि दहेज, जाति–पांति के बंधन, माता–पिता

के दबाव आदि कुरीतियां समाप्त हो जाएं तो प्रेमाकर्षण ही विवाह का कारण रह जाएगा; तब अधिकांश सोलमेट्स एक-दूसरे को खोज लेंगे। याद रखना अधिकांश ही कह रहा हूं, और भी अनेक कारण हैं जिनका प्रभाव घटनाओं पर पड़ता है।

30. **चुनाव के अवसर किस भांति मिलते हैं?**

जब सूक्ष्म लोक से पुनः आत्मा धरती पर आने को उत्सुक होती है तो उसे जन्मने के पूर्व आगामी जीवन की झलकें दिखाई जातीं हैं, अनेक संभावनाओं में से चुनाव के मौके मिलते हैं। हां, स्प्रिट गाइड्स अपनी सलाह अवश्य देते हैं कि कौन सा जीवन ज्यादा शिक्षाप्रद होगा, मगर अंततः आत्मा खुद ही तय करती है। जन्म का समय, परिवार, संस्कृति, परिस्थिति, विकास के अवसर; सभी बातें पसंद-नापसंद के आधार पर चुनी जाती हैं।

31. **कोई व्यक्ति दुखद परिस्थितियों में पैदा होना क्यों चुनता है?**

इसके दो महत्वपूर्ण कारण हैं-

पहला, विकास में सहयोगी दुख-दर्द भी खुद ही चुने जाते हैं। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति ने किसी की हत्या की थी, तो उसकी आत्मा देखना चाहती है कि हत्या किए जाने पर खुद को कैसा लगेगा? वह ऐसी परिस्थिति चुनेगी कि उसकी हत्या हो, ताकि उसमें दूसरे की पीड़ा अनुभव हो तथा हृदय करुणा से भरे। यह सबक उसने खुद चुना है।

दूसरा कारण है 'पैकेज डील'-एक चीज के संग दूसरी मुफ्त प्राप्त होती है। जैसे संगीतकार पिता के घर को चुना तो शायद गरीबी भी साथ मिलेगी; या धनवान पिता को चुना तो संभवतः संगीत के आयाम में डूबने की सुविधा न जुट पाएगी। पहलवान शरीर के संग अधिकतर तेज दिमाग नहीं मिलेगा, बुद्धिमान की तरह जन्मने पर सामान्य अथवा दुर्बल काया ही मिलेगी। अपने निश्चय को दृढ़ करने, संकल्प को बढ़ाने के लिए आए व्यक्ति को कठिनाइयों व संघर्ष वाली जिंदगी चुननी होगी। आत्मिक साधना को गति देने में उत्सुक आत्मा को पूरब में पैदा होना पड़ेगा, साथ में मच्छर-मक्खी और उनके द्वारा फैलाए जाने वाले रोग भी मिलेंगे।

यह ठीक ऐसा ही है जैसे आजकल बाजार में 'पैकेज डील' चलती है या 'बाय वन एंड गेट वन फ्री' वाली स्कीम। हीरे जवाहरात के पैकेट में सांप-बिच्छू भी बंद हैं। सौंदर्य के संग घमंड है। कला के साथ अभिमान है। अभी कुछ दिन पहले एक अमीर के बेटे को डाकू अपहरण कर ले गए। वे मुझसे पूछ रहे थे कि उन्होंने कौन सा दुष्कर्म किया है जिसकी सजा भुगतनी पड़ी? कुछ वर्ष पहले रिश्वत न देने पर इन्कम टैक्स वालों ने उनके यहाँ छापा मारा था। पार्टी के लिए चंदा मांगने वाले नेताओं से भी वे त्रस्त रहते हैं। मैंने उन सज्जन से कहा—आपका अति धनवान होना ही चोर-डाकुओं और नेताओं-घूसखोर अफसरों को आमंत्रित करता है। यह आपका चुनाव है।

32. **जन्म चुनने में कर्मबंध का क्या रोल है?**

आत्मा अपने अगले सबक का अवसर स्वयं ही चुनती है। कर्मबंध सजा के समान नहीं है। स्प्रिट वर्ल्ड में गाइडेन्स उपलब्ध है, मानना मजबूरी नहीं है। प्रत्येक चेतना की स्वतंत्रता का पूर्ण सम्मान है। कर्मबंध कहने से बंधन का अहसास होता है। वास्तव में उसे कुछ और कहना चाहिए। जैसे पढ़ने के लिए एक विद्यार्थी कालेज में भर्ती होता है, होस्टल में रहता है; तो वहाँ की व्यवस्थानुसार नीति-निर्देशों का पालन करता है। यह कोई कारागृह नहीं है। विद्यालय का अनुशासन पालन करना उसका चुनाव है। स्कूल में विषय का चुनाव भी उसने खुद ही किया था। संगीत में बी.ए. करने के बाद अब मेडिकल कालेज में एडमीशन नहीं मिल सकता। संगीत में एम.ए. और पीएच.डी. करने की स्वतंत्रता है। इसी बात को हम निगेटिव भाषा में व्यक्त कर सकते हैं कि बेचारा संगीत में पीएच.डी. करने के लिए मजबूर है। मैं विधायक 'टर्मिनोलॉजी' का प्रयोग करना पसंद करूंगा कि वह म्यूजिक में डॉक्टरेट करने हेतु स्वतंत्र है। संक्षेप में ऐसा समझें कि हमारे पिछले कर्म हमने अपनी पसंद से चुने थे। चूंकि हम वही हैं, हमारी पसंद वही हैं, इसलिए आगे उन्हीं कर्मों को करने की संभावना है—आदत, एडिक्शन, लत पड़ गई है। लेकिन जब दिल आ जाए परिवर्तन की आजादी है। संगीत नहीं पढ़ना तो छोड़ो, फिर से साइंस और बायोलॉजी लेकर हाई स्कूल में दाखिल हो जाओ, मेडिकल डॉक्टर बनने की दिशा में श्रम करो। कोई रोक नहीं रहा है। तुम्हारी मौज है!

33. **गर्भ में आत्मा का प्रवेश कब होता है? क्या जीवनकाल में आत्मा कभी देह के बाहर भी जाती है?**

गर्भाधान के 3 माह बाद से लेकर जन्मने के क्षण तक; कभी भी आत्मा का प्रवेश हो सकता है। औसत 6 माह समझ लें। गर्भ का चुनाव पहले हो जाता है, जैसे आपने कोई मकान पसंद कर लिया, पैसे भी चुका दिए, चाबी हासिल कर ली; मगर गृह प्रवेश बाद में किया। प्रवेश के बाद और जन्म के पूर्व बारंबार आना-जाना चलता रहता है। आत्मा गर्भ में अधिक देर नहीं रहती। जन्म के बाद भी 3 साल तक काफी घूमना-फिरना जारी रहता है, विशेषकर नींद में। बाद में क्रमशः कम होता जाता है। चौदह साल की उम्र के बाद यदा-कदा गहरी नींद में, गहन सम्मोहन में, अनीस्थिीसिया में, तथा समाधि में अस्थायी रूप से 'आउट ऑफ बॉडी एक्सपीरियेंस' देह के बाहर निकलने का अनुभव होता है। कभी-कभी अनायास मृत्यु के सामने आने पर, जैसे किसी कार दुर्घटना के एक क्षण पहले ही आत्मा शरीर को छोड़ चुकी होती है।

34. **आत्मा को पिछला जन्म कब तक याद रहता है?**

पुरानी स्मृतियां क्रमशः विलुप्त होती हैं। 3 साल की उम्र तक नए जीवन से, आसपास के लोगों से, वातावरण से तादात्म्य निर्मित हो जाते हैं। ऐसा जरूरी है, वरना जिंदगी जीना कठिन हो जाएगा। पुराना सब याद रहे तो मस्तिष्क पर अति बोझ पड़ जाएगा। पिछले जन्म की मां हो सकता है इस जन्म में बहन हो, संभव है। भाई या पति विगत कहानी में हत्यारा हो, उन लोगों से 'रिलेट' करना, संबंधित होना दूभर हो जाएगा। प्रकृति की कृपा से हम सब भूल जाते हैं। नई कहानी नए सिरे से आरंभ करते हैं।

35. **मस्तिष्क और मन में क्या अंतर है?**

ओशो ने एक अंग्रेजी प्रवचन में 'स्माल एंड कैपिटल एम वाला माइंड' कहकर शारीरिक दिमाग तथा आत्मिक मन का वर्णन किया है। जन्म के पहले ही

देह के मस्तिष्क (छोटे मन) और आत्मा के स्मृति आलय (बड़े मन) का 'सिनक्रोनाइजेशन' शुरु हो जाता है। यह प्रक्रिया बाद में भी चलती रहती है। कंप्यूटर की भाषा में ऐसा समझें कि दिमाग हार्ड-डिस्क है, और चित्त साफ्ट-वेयर है। आत्मा के संस्कार अर्थात 'प्रोग्रामिंग्स' दैहिक मन से संयुक्त होकर उसे अपने ढंग से चलाने लगते हैं। मस्तिष्क माता-पिता के शरीर से निर्मित है, उनके आनुवांशिक गुणधर्म 'क्रोमोसोम्स एंड जीन्स' के माध्यम से उसमें आ जाते हैं। जन्मों-जन्मों में निर्मित सूक्ष्म शरीर का मन आकर इस भौतिक उपकरण का उपयोग करने लगता है। तो ऐसा समझें कि मस्तिष्क पूर्वजों की शृंखला से और मन हमारे ही पिछले जन्मों की शृंखला से आते हैं। इन दोनों के संयोग से नए जीवन की कथा शुरु होती है। दोनों का योगदान उसमें रहता है। जिंदगी के अनुभव मन को और परिपक्व बनाते हैं। मृत्यु के बाद उस ज्यादा प्रौढ़ मन को लेकर हम अगली यात्रा पर निकल जाते हैं।

इस संबंध में ओशो ने इस तरह प्रकाश डाला है—

Separate Bodies, Overlapping Minds, and One Soul. Mind is making almost no noise; goes on working silently. And such a servant! -- for seventy, eighty years. And then, too, when you are dying your body may be old but your mind remains young. Its capacity remains yet the same. Sometimes, if you have used it rightly, it even increases with your age! -- because the more you know, the more you understand, the more you have experienced and lived, the more capable your mind becomes. When you die, everything in your body is ready to die -- except the mind.

That's why in the East we say mind leaves the body and enters another womb, because it is not yet ready to die. The rebirth is of the mind. Once you have attained the state of samadhi, no-mind, then there will be no rebirth. Then you will simply die. And with your dying, everything will be dissolved -- your body, your mind... only your witnessing soul will remain. That is beyond time and

space. Then you become one with existence; then you are no more separate from it. The separation comes from the mind….

Meditation is not an effort against the mind. It is a way of understanding the mind. It is a very loving way of witnessing the mind -- but, of course, one has to be very patient. This mind that you are carrying in your head has arisen over centuries, millennia. Your small mind carries the whole experience of humanity -- and not only of humanity: of animals, of birds, of plants, of rocks. You have passed through all those experiences. All that has happened up to now has happened in you also. In a very small nutshell, you carry the whole experience of existence. That's what your mind is. In fact, to say it is yours is not right: it is collective; it belongs to us all….

Our minds are not so separate. Our bodies are clear-cutly separate; our minds overlap -- and our souls are one.

Bodies separate, minds overlapping, and souls are one. I don't have a different soul and you don't have a different soul. At the very center of existence we meet and are one. That's what God is: the meeting-point of all. Between the God and the world -- 'the world' means the bodies -- is mind. Mind is a bridge: a bridge between the body and the soul, between the world and God. Don't try to destroy it!

Many have tried to destroy it through Yoga. That is a misuse of Yoga. Many have tried to destroy it through body posture, For example: if you stand on your head in shirshasan -- in the headstand -- you can destroy the mind very easily. Because when the blood rushes too much, like a flood, into the head -- when you stand on your head

that's what you are trying to do.... The mind mechanism is very delicate; you are flooding it with blood. The delicate tissues will die.

-Osho, 'A sudden clash of thunder' #2, Q-1

36. **मन में अहंकार एवं अन्य बुराइयां क्यों उत्पन्न हो जाती हैं?**

सारी भौतिक जरूरतें तन की और मानसिक जरूरतें मन की हैं। दैहिक मन का कार्य है शरीर की चिंता करना, उसी से षटरिपु जन्मते हैं। बहिर्मुखता जीवन के लिए अनिवार्य है। हर चीज के लिए संघर्ष, गलाघोंट स्पर्धा, छीना-झपटी, चालाकी आवश्यक है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, भय आदि का इकट्ठा नाम ही अहंकार है। 'जीव ही जीव का भोजन है' यह कहावत सार्थक है। बिना हिंसा के एक सांस लेना असंभव है। भोजन-पानी असंभव है। बुराइयों में चुनाव केवल इतना हो सकता है– कम या ज्यादा मात्रा का! मांसाहार अधिक हिंसक है, शाकाहार कम हिंसक है।

आत्मिक मन साधना एवं उर्ध्वगमन की ओर उन्मुख कराता है। अंतर्मुखता ध्यान, समाधि की ओर ले जाती है। वहां कोई प्रतियोगिता नहीं है, जितना ओंकार आपके पास है उतना ही प्रत्येक के पास है। ऐसा नहीं कि मीराबाई ने 'पायोजी मैंने रामरतन धन पायो' कह दिया तो अब आपके धन में कुछ कमी आ जाएगी। कबीर साहब 'रामनाम की लूट है, लूट सकै तो लूट' की चेतावनी देकर फिर बोले–'कहै कबीर मैं पूरा पाया' इस वक्तव्य से ऐसा न समझना कि जब तुम निर्वाण में पहुंचोगे तो परमात्मा 'आउट ऑफ स्टॉक' हो चुका होगा।

मस्तिष्क शरीर का ख्याल रखता है, बुराइयों का स्त्रोत बन जाता है; आत्मिक मन चैतन्य की जरूरतों का ध्यान रखता है इसलिए पुण्य का केन्द्र है। इस लौकिक जिंदगी में दोनों का अपना-अपना महत्व है। कौन हावी हो जाता है, किसका प्रतिशत ज्यादा हो जाता है; उसी पर निर्भर करता है कि व्यक्ति संसारी प्रवृत्ति का होगा या साधक कोटि का। मेरी दृष्टि में तो बुराइयों को कुछ और नाम देना चाहिए।

जैसे अंग्रजी मुहावरा है–'ग्रेटर ईविल और लैसर ईविल', वह नकारात्मक है। सकारात्मक भाषा का प्रयोग बेहतर होगा–'ग्रेटर गुड और लैसर गुड'। सभी कुछ अच्छा है। कुछ कम, कुछ ज्यादा। संसार भी संन्यास की दिशा में ले जाने वाला मार्ग है। भौतिकता, आध्यात्मिकता की सीढ़ी है।

37. **शुभ-अशुभ का द्वंद्व कहाँ से आता है?**

देहिक एवं आत्मिक–दोनों मनों का अंतराल तनाव और खंडित मनसिकता पैदा करता है। हर आदमी कमोवेश स्कीजोफ्रेनिक है, स्प्लिट पर्सनैलिटी अथवा दूसरे शब्दों में 'बाइपोलर डिसीज' से पीड़ित है। दोनों मनों का अंतराल सामान्य से अधिक होने पर 'फेज' सुस्पष्ट हो जाते हैं। जैसे, कोई व्यक्ति साल में 6 माह आशावादी, ऊर्जा-अतिरेक में, स्फूर्ति व उमंग से भरा, खूब कर्मठ होकर जीता है। फिर 6 माह निराश, हताश, तमस में, सिकुड़ा हुआ जीता है। तो सबको दिखने लगता है कि दिमाग गड़बड़ है। हम जिसे सामान्य कहते हैं वह भी सुबह खुश, शाम को उदास होता है। कभी क्रोध से तो कभी करुणा से ओतप्रोत होता है। जरा में दया, जरा में कठोरता प्रगट हो जाती है। इसका द्वंद्वात्मक व्यवहार औसत 'रेंज' में रहता है। शुभ-अशुभ का, मुहब्बत-नफरत का, स्वार्थ-परमार्थ का द्वैत दो मनों के विपरीत स्वभाओं के कारण पैदा होता है। एक ऊर्ध्वगामी है, दूसरा अधोगामी। एक बहिर्यात्रा में तो दूसरा अंतर्यात्रा में रस लेता है। एक को पाप में तो दूसरे को पुण्य में उत्सुकता है।

38. **स्कीजोफ्रेनिया का और भी कोई कारण संभव है?**

हां। दो या अधिक मनों के अंश संयुक्त होकर जन्म सकते हैं। जैसे अनेक उपन्यासों के पृष्ट फाड़कर उनमें से कुछ को जोड़कर बाइन्ड कर दिया जाए। एक नई किताब बन जाएगी। मगर इसकी कहानी कुछ समझ नहीं आएगी। कहीं कुछ कहीं कुछ और! एक आदमी में दो या अधिक आदमियों के मन के अंशों का संयुक्त होना–खंडित मानसिकता की एक वजह यह संभव है, ऐसा ओशो ने पहली बार उद्‌घाटित किया।

39. **स्कीजोफ्रेनिया का कारण मेडिकल साइंस के हिसाब से तो रासायनिक पदार्थों की कमी है।**

हां। वह भी सच्चाई का एक पहलू है। वास्तव में हमारे चारों शरीरों का समानांतर अस्तित्व है। स्थूल शरीर- भौतिक पदार्थ से, भाव शरीर-रासायनिक पदार्थ से, सूक्ष्म शरीर- विद्युत के समान प्राण ऊर्जा से, और मनस शरीर- विचार, स्मृति, संस्कार से निर्मित है। इन्हें हम क्रमश: फिजिकल, केमिकल, इलेक्ट्रिकल, मेन्टल बॉडीस कह सकते हैं। मेडिकल साइंस ने हारमोंस और न्यूरोट्रांसमिटर्स की बात खोज ली है। वह भी सत्य है। सब घटनाएं संयुक्त हैं। मन को कोई सदमा लग गया अथवा एस्ट्रल बॉडी में गड़बड़ हो गई तो उसके पैरेलल केमिकल्स में परिवर्तन हो जाएगा। भौतिक देह में उनके परिणाम दिखाई देने लगेंगे। विपरीत भी संभव है। न्यूरोट्रांसमिटर्स की कमी पैदा हो जाए तो मनस शरीर प्रभावित हो जाएगा। भौतिक शरीर भी प्रभावित हो जाएगा। विचार, भावनाएं, हारमोंस, स्थूल देह; सब आपस में जुड़े हैं।

40. **ओशो सात शरीरों की बात करते हैं। शेष तीन क्या हैं?**

आत्म शरीर- निजी साक्षी चैतन्य है, ब्रह्म शरीर- परम साक्षी चैतन्य है, और निर्वाण शरीर- महाशून्य है। पर्सनल कॉसियसानेस को आत्मा तथा कॉस्मिक कॉसियसानेस को परमात्मा कहा जा सकता है। प्रथम चार शरीरों के संयोग से अहंकार की भ्रांति पैदा होती है- 'मैं हूं'। आत्मा में केवल 'हूं-पन' रह जाता है और परमात्मा में सिर्फ 'है-पन'। निर्वाण-काया में है-पन भी विलीन हो जाता है, 'नहीं है-पन' या नथिंगनैस शेष बचती है।

3

मौत के बाद, जन्म से पहले

(अंतिम भाग)

41. **सद्‌गुरु शैलेन्द्र जी, उपनिषद के ऋषि पांच शरीरों या कोषों की बात करते हैं। क्या वह गलत है?**

विभाजन के अलग-अलग ढंग हैं। एक विशेष दृष्टिकोण से वे सब उपयोगी हैं। उपनिषद के ऋषि पांच में बांटते हैं- अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनंदमय कोष। तीन में भी बांट सकते हैं- स्थूल, सूक्ष्म और शून्य। दो में भी बात कही जा सकती है- प्रगट एवं अप्रगट, संभूत तथा असंभूत ब्रह्म। बगैर बांटे भी काम चल जाएगा- अद्वैत, एक ओंकार सतनाम, एकांतवाद। कौन सही, कौन गलत; ऐसा न पूछें। विभाजन समझाने के लिए हैं। असली बात को समझें। जैसे- पत्ते, फूल, डंठल, शाखा, तना, जड़; कहने को अलग-अलग हैं, मगर वस्तुतः वृक्ष एक जैविक इकाई है- सिंगल बायोलॉजिकल युनिट।

42. **कुछ लोगों के भीतर कॉन्सियस या अंत:करण जैसी कोई चीज नहीं होती। ऐसा क्यों?**

अपराधी व पागल में करीब-करीब पूर्णत: दैहिक मन हावी रहता है, इसलिए वे समग्रता से जीते हैं। उन्हें द्वंद्व का अहसास नहीं होता, क्योंकि अंतर्शक्ति विभाजित नहीं रहती। पुण्यात्माओं, साधुओं, सज्जनों में आत्मिक मन हावी रहता है। सामान्य सभ्य मनुष्य में दोनों का द्वंद्व आधा-आधा मौजूद रहता है। कभी पाप तो कभी पुण्य उन्हें खींच लेता है। कभी नैतिकता तो कभी अनैतिकता का आकर्षण प्रबल हो जाता है। चोरी और दान, तमस व रजस, प्रेम व क्रोध के बीच पैंडुलम की भांति वे डोलते रहते हैं। हर समाज हर युग में अलग प्रकार का अंत:करण मन पर संस्कारित करता है। सभ्यता, शिक्षा, नैतिकता का आग्रह, नीति का सम्मान, अनीति का अपमान, भय व लोभ पर आधारित रहते हैं। असंस्कारित, असामाजिक व्यक्ति अपराधी-मन वाला बन जाता है या पांखड करते-करते द्वंद्व का तनाव इतना अधिक हो जाता है कि वह पागलपन में प्रवेश कर जाता है। तब उसका अंत:करण नष्ट हो जाता है।

43. **क्या अंत:करण से ही धर्म-अधर्म तय होता है?**

अंत:करण से नीति-अनीति का निर्धारण होता है, धर्म-अधर्म का नहीं। नीति-अनीति समयानुसार, समाज व देश के मुताबिक फैशन जैसी बदलती रहती हैं। भगवान महावीर के अनुसार गति व अगति के तत्व ही धर्म-अधर्म की परिभाषा बनाते हैं। नैसर्गिक विकास की गति को कम करने वाले तत्व अधर्म हैं, ज्यादा करने वाले तत्व धर्म हैं। इसलिए प्रेम, करुणा, दया, भाईचारा, अहिंसा धर्म हैं। सारे प्राणी क्रमश: इवोल्यूशन के द्वारा इन्हीं गुणों की ओर विकसित हो रहे हैं। लेकिन प्रकृति के विकासक्रम में लंबा वक्त लगेगा। धार्मिक क्रांति या रिवोल्यूशन का अर्थ है- एक्सीलेरेशन इन दि प्रोसेस ऑफ इवोल्यूशन। कठोरता, हिंसा, क्रूरता, द्वेष, ईर्ष्याभाव हमें वापस आदमियत से पशुता की ओर धकेलते हैं। हम पीछे जा तो नहीं सकते, जिंदगी की कार में कोई रिवर्स गियर नहीं है। लेकिन ब्रेक लग सकता है, हम रुक सकते हैं। विकास प्रक्रिया को मंद कर सकते हैं। यही अधर्म है।

44. **परमगति या मोक्ष धर्म की मंजिल कही जाती है। चार पुरुषार्थों में अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष को गिना जाता है। क्या ये परस्पर विपरीत नहीं हैं?**

परस्पर विपरीत नहीं, वरन परिपूरक हैं। इनमें सोपान जैसा एक क्रम है। इनमें से दो साधन हैं, दो साध्य। अर्थ साधन है कामना का। धर्म साधन है मोक्ष का। कामनाएं ही आवागमन में लातीं हैं। इसलिए निष्कामना, वासना के बीजों को दग्ध करना, सम्भावना व तथाता की साधना, भविष्य व लक्ष्य से मुक्त होना, फलाकांक्षारहित होना, अकर्ताभाव या अकर्म में जीना, निर्बीज समाधि में डुबाता है। मोक्ष में गति कराता है, यानी गति-अगति के पार। 'महागीता' में अष्टावक्र कहते हैं-

हे जनक, कामना जैसी व्याधि नहीं
और निष्कामना-सी समाधि नहीं।

कामनाओं की पीड़ा से गुजरकर ही निष्काम-भाव का आनंद फलित होता है। विपरीत परिप्रेक्ष्य 'कंट्रास्ट' के बिना कुछ अनुभव नहीं होता। बीमारी के बाद स्वास्थ्य, विरह के उपरांत मिलन, मृत्यु से घिरा हुआ जीवन, कांटों में खिला फूल, काले बादलों में चमकती श्वेत विद्युत... बस सारे अनुभव ऐसे ही हैं- संसार के बाद मोक्ष भी!

45. **इस सारी गत्यात्मकता की जरूरत क्या है?**

गत्यात्मकता की कोई जरूरत नहीं है, यह सृजनात्मकता है। ओवरफ्लोइंग एनर्जी है- ऊर्जा-अतिरेक का खेल है। रोटी, दाल, चावल, सब्जी, पानी अनिवार्य हैं, जरूरत हैं। वे शरीर की 'नीड्स' हैं। चाकलेट, आइसक्रीम, पिज्जा, कोल्ड ड्रिंक्स आदि 'लक्जरी' हैं। उनके बिना भी मजे से काम चल जाएगा। वे जरूरत नहीं, अमीरी के शौक हैं। अस्तित्व महा-ऐश्वर्यवान है, इसीलिए तो भक्तों ने उसे 'ईश्वर' पुकारा है। वहाँ कृपणता से काम नहीं हो रहा, आनंद-अतिरेक से सब खेल चल रहा है। इसे लीला की भांति देखो, काम की तरह नहीं, गंभीर नजरिये से नहीं। छोटे बच्चे उछल-कूद करते, शोर मचाते, गाते, नाचते, भागते; पूछो किसलिए? नदी

किनारे रेत के तट पर घरौंदे निर्मित करते, फिर खुद ही उछलकर मिटा देते, किसलिए? वे खूब शक्ति से ओतप्रोत हैं, क्या करें? कुछ तो करेंगे न! बस, परमात्मा की लीला को भी ऐसा ही जानो।

46. **इस खेल में कितना समय लगता है?**

जिस सागर से लहरें उठतीं, उछलतीं, खेलतीं, शोर मचातीं; लगभग एक लाख वर्ष में वापस गिरकर पुनः उसी सागर में विश्राम करतीं। फिर उसी जल-भंडार से नई तरंगें पैदा होतीं। मौज कहते है लहरों को, बस मौज-मस्ती है। आपको शायद मालूम होगा भौतिकशास्त्र के मुताबिक लहर न कहीं आती, न कहीं जाती। गत्यात्मकता शब्द भी सटीक नहीं है, भूल भरा है। केवल ऐसा प्रतीत होता है कि तरंग गतिमान है, वास्तव में उसी जगह लहराती रहती है। (शैलेन्द्र जी मुस्कुराकर कहते हैं) एक लाख वर्ष सुनकर घबरा न जाना! कुछ कम कर दूं क्या...???

47. **खेल कहने में मामला गैर-गंभीर प्रतीत होता है। विकास क्रम कहने से गंभीर बात लगती है।**

हां, आप चाहो तो जीवन को विकास क्रम का खेल कह लो। लीला है सब। ओशो कहते हैं- 'लाइफ इज ए कॉस्मिक जोक'।

48. **ओशो जैसी यह बात किसी और ने भी बताई है?**

बताई तो है मगर जरा क्लिश्ट शैली में। वैसे भी अधिकतर लोग मजाक की बात नहीं समझते। उसे भी गंभीर दार्शनिक सिद्धांत बना लेते हैं। महावीर ने कहा है- जहाँ से आत्माएं उत्पन्न होती हैं उस स्थान का नाम है- निगोद और अंततः जहाँ पहुंचकर विश्राम करती हैं वह जगह है- मोक्ष। फिर महावीर कहते हैं कि निगोद एवं मोक्ष एक ही स्थान के दो नाम हैं। जैसे आधुनिक खगोलविदों ने पता लगाया ब्लैक होल्स व व्हाइट होल्स का। अब वे कहते हैं कि दोनों प्रकार के

होल्स संभवतः एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह हैं। एक तरफ से सृष्टि उपज रही है, दूसरी ओर से प्रलय घट रही है।

3

49. **क्या आप इस सारी चर्चा का सारसूत्र संक्षेप में कहेंगे?**

संत जगजीवन साहब के शब्दों में सुनो–

'बौरे, जामा पहिरि न जाना।
को तैं आसि कहाँ ते आइसि, समुझि न देसि ज्ञाना।।
घर वह कौन जहाँ रहबासा, तहाँ ते किहेउ पयाना।
इहाँ तौ रहिहौं दुई-चार दिन, अंत कहाँ-कह जाना।।
पाप-पुन्न की यह बजार है, सौदा करु मन माना।
होइहि कूच ऊँच नहिं जानसि, भूलसि नाहि हैवाना।।
जो जो आवा रहेउ न कोई, सबका भयो चलाना।
कोऊ फूटि टूटि गारत भा, कोउ पहुँचा अस्थाना।।
अब कि सँवारि सँभारि बिचारिले, चूका सो पछिताना।
जगजीवन दृढ़ डोरि लाइ रहु, गहि मन चरन अडाना।।'

सारसूत्र यही है कि अरे पागल! तुझे देह रूपी कपड़े पहनना नहीं आता। कहाँ से आना हुआ और कहाँ को पयाना यानी प्रस्थान होगा? यहाँ चार दिन का घूमना-फिरना है, तेरा असली घर कहाँ है? पाप-पुण्य के इस बाजार में हैवान या पशु मत बन, 'ऊँच' अर्थात् उच्चतम गंतव्य यानी निर्वाण का ख्याल कर। कोऊ फूटि टूटि गारत भा, यानी कोई कुदरत के रिपेयर वर्कशॉप में पहुंचता है, कोउ पहुँचा अस्थाना, कोई अपने असली निवास स्थान में विश्राम करता है। इस बार मत चूक जाना वरना पुनः पश्चाताप करना पड़ेगा। ध्यान की डोरि पकड़ ले। 'चरन अडाना' यानी अंगद सा संकल्प साध ले, पीछे न हट। ध्यान में अडिग हो जा। सारसूत्र यही है।

सारसूत्र को संक्षेप में, इस टेबिल के रूप में पुनरावलोकन कर लें-

त्रिलोक

महाजीवन	**भौतिक जीवन**	**परम जीवन**
आत्म लोक	मर्त्यलोक	अमर लोक
सूक्ष्मलोक	स्थूल, मृण्मय लोक	चिन्मय लोक
घर/गाइड्स/एल्डर्स/ उन्नत आत्माएं	पाठशाला-जिंदगी की घटनाएं, मौत, गुरु	चाकरी/बेगारी/गुरुओं के गुरु/अति उन्नत आत्माएं
स्वर्ग	भूलोक/नर्क	बैकुंठ
सद्‌भावनाएं	सद्‌भावनाएं+दुर्भावनाएं	भावातीत अवस्था
देवलोक/परलोक	मनुजलोक	विष्णुलोक/भागवतलोक
मायका जहाँ माता-पिता तुल्य गाइड्स हैं	ससुराल जहाँ असली प्रीतम नहीं रहता	असली ससुराल वाला घर पति-सहवास
परस्पर-तंत्रता	परतंत्रता-स्वतंत्रता	परम स्वतंत्रता/मोक्ष
मैत्री, भाईचारा	काम वासना, प्रेम-घृणा	करुणा
शांति, निरुत्तेजना	सु-दु/उत्तेजना	आनंद
धर्मलोक/यम लोक	द्वैतलोक	निर्वाणलोक
मन+चेतन	तन+मन+चेतन	चेतन
अंतर्आत्मा	बहिर्आत्मा	परम आत्मा
बीजात्मा	देहधारी जीवात्मा	मुक्तात्मा
अस्मिता- सूक्ष्म मैं (मन)	अहंकार-स्थूल मैं (तन-मन)	अस्तित्व- न मैं, न तू
विदेही जगत	दैहिक जगत	अ-मनी जगत
स्वप्न जैसी स्थिति	जागृति जैसी स्थिति	सुषुप्ति जैसी स्थिति

50. **मा ओशो कल्याणी– आखिरी सवाल है, आप हमेशा हंसी-मजाक में प्रश्नों के जवाब देते हैं, आज एकदम गंभीर ढंग से उत्तर दिए। इसका राज?**

3

शैलेन्द्र जी हंसकर बोले– लो... घंटे भर से मजाक नहीं तो और क्या कर रहा हूं! महावीर ने कहा– निगोद और मोक्ष एक ही हैं। इससे बड़ा कोई चुटकुला हो सकता है! ओशो का एक प्रवचनांश सुनाता हूं। फिर हम विदा होंगे। 'दि हार्टबीट ऑफ दि एब्सोल्यूट' के अठारहवें प्रवचन के अंत में ओशो कहते हैं–

The sage has created this sutra in order to make fun of himself -- to laugh at himself as well as at all of us.

MIND COMES FIRST, BODY FOLLOWS

SUTRA- NOW LET MY SPIRIT MEET THE ABSOLUTE, PERVADING ALL THROUGHOUT THE VITAL AIR, AND LET MY BODY BE REDUCED TO ASHES. O MY MIND FULL OF EGO AND DESIRES, NOW REMEMBER YOUR PAST ACTIONS, REMEMBER YOUR PAST DEEDS.

Only the body perishes at the time of death; the egoistic mind does not. You travel with your mind even after death. That mind is

the current of your countless births. The body falls here, the mind travels on with you. Desires accompany you. Ego travels with you. The memory of past actions goes with you. The desire to accomplish those things you could not do goes with you. Your entire mind goes with you. Only the physical body dies. Mind leaves the body and catches hold of a new body -- this mind that has already caught hold of countless bodies in the past and will go on doing so.

This is why those who know do not consider death to be real death -- because nothing perishes in it, we merely change our clothes. Understand this well: the body is no more than clothes, no more than an outer covering. Ordinarily we think that the body is born first and then the mind is born in it. This is wrong. During the last two hundred years Western thinking and belief has spread the illusion that the body is created first, and that the mind is then born in it, as a by-product, an epiphenomenon, as simply one quality, one attribute of the body.Western science is at present also in a state of ignorance in this matter, believing that the mind comes after the body, as a shadow. But in the East, those who have searched deeply into this subject maintain that the mind is first and the body comes like a shadow after it. Let us understand it in this way: what comes first in your life, the action or the desire? First comes the desire in the mind, and then it is turned into action -- the action follows. But if anyone sees it from outside, he will see the action first and will have to guess about the desire behind the action. Suppose anger arose within me and I slapped you: first came anger, first came the mind, then the hand was raised and the body performed the action. But you will see my hand and the act of slapping first. Even so, you will no doubt reason that I must first have become angry. The bodily action is seen first, and as a result you start guessing what is going on in my mind. But still those workings of my mind came first, and the action of the body follows.

When a child is born we also see the body first, but those who know deeply say it is the mind that comes first. That very mind causes the body to be conceived and born. That mind creates the outline, the form of this body. It is a sort of blueprint,

it is an in-built program. When a person dies, his mind goes on its journey with a blueprint, and that blueprint maps itself into a new womb. And you will be surprised to know this: we commonly believe that a body is produced when a man and a woman make love, and then a soul enters the body, but on looking deeply into this phenomenon it becomes evident that when a soul desires to enter a womb, then both the man and the woman become eager for sexual activity. Again, it is the body that is seen first, and we have to guess about the mind. However, those who have looked deeply into this matter say that when a soul desirous of entering a womb begins to wander around you, then there arises a longing for sexual enjoyment. The mind is busy getting a body ready for itself. You might not have thought of this happening.

In death, the body disintegrates but the mind continues its journey. The age of your body may be fifty years but that of your mind can be five million. The sum total of all the minds born in all your births is there in you even today. Buddha has given a very significant name to this happening. He was the first to do so. He named it the storehouse of consciousness. Like a storehouse, your mind has stored all the memories of all your past births -- so your mind is very old. And it is not that your mind is the storehouse of only human births: if you were born as animals or as trees, as is surely the case, the memories of all those births are also present within you.

Whatever happens in our lives is not accidental. A subtle process of cause and effect is working behind these happenings. Though the body perishes in death, the mind continues its journey and goes on collecting memories.Our death is the death of our body only. Our mind full of ego and desires does not die then, so there would have been no opportunity for the sage to joke in this way if he were simply facing physical death. This sutra is said at the time of samadhi. Remember the illusions you created in me. Remember the dreams you gave me. Remember the follies you led me into. Now you yourself are going away, and I am entering a region where you will not be. Till now you have always persuaded me that where ego is not, where will is not, there is no being. But I see today that you are going away, yet my being remains."

The mind always says, "If there is no will you will perish. You will be unable to stand up against the conflicts of life. If there is no ego in you, you will perish; you will not survive!" The mind always instigates action, determination and fight. "If you don't fight you will be wiped out." Surely, it is only natural for the sage on this day to make fun of his mind, to say to the mind, "You yourself are perishing today while I am intact. You are departing, I am not. Until now you have deceived me, telling me that I shall not be saved if you are not. But today you are leaving and I am not."

The sage makes use of this moment to joke and jest for two reasons: one is for his own mind, and the other is for the minds of those who have not yet reached the door of samadhi and are busily occupied in a thousand and one activities, whose minds are inducing them to do this and to do that, whose minds still tell them, "Your life is wasted if you fail to accomplish this, if you fail to build this palace," whose minds tell them, "You are worth nothing if you fail to accomplish this mission, this adventure."

To such people the sage is addressing his joke. He warns them to think again, because the mind is the greatest deceiver. All our deceptions are created by the mind. Each and every one of us lives in a dream world, and the mind is so clever that it does not allow us to see deep enough to reveal its deceptions. It disappears like the flame of a lamp whose oil is finished. Even if the oil in the lamp is finished, the wick will continue to burn as long as there is a little oil in the wick -- but now it will not burn for long. The sage is in a similar condition. He has realçed, "I am not the mind," but the flame continues burning now from the little oil remaining in the wick. The sage is addressing this flame in its last burning moments, "O my egoistic mind, you promised me to be always with me and to give me light. But you are on the point of being extinguished. I see now that the oil is finished, so I ask you how long can you last now? You are completely finished, and yet I AM." So he is telling his dying mind, "I was always separate from you, but I always identified with you. It was my delusion -- samsara, maya -- the great delusion!"

The sage is addressing himself, and as I told you, he is addressing you also. Perhaps you can also realçe it.

When the mind vanishes everything vanishes, because it is the nucleus to which everything is linked. The wheel of our entire life revolves on it. Therefore the sage declares that the five elements in the body will absorb themselves in their sources and everything will vanish, because the mind -- the nucleus joining all together -- is disappearing today.

When he attained to the ultimate knowledge Buddha said a wonderful thing. When his mind was destroyed for the first time and he entered that state of void, he said exactly the thing which the sage of the Upanishad has said. He said, "O mind, now I bid you farewell. Till now you were needed, for I wanted to have a human form. But now I do not need the human body so you can leave. Till now, needing the body, I needed its architect, the mind, too. Nobody can be created without it. Now I have my supreme abode. Now I have reached my destination. Now I have reached that uncreated house, that dwelling in my self. Now you can depart."

Such sutras are very important for seekers of truth. There is no benefit in committing them to memory. They are beneficial only if kept in the heart.So remember this sutra when the mind, like a gambler, urges you on, win or lose! And address it thus: "O my mind full of ego and desires... remember your past actions." The result of this remembering will be that your great attraction to a particular action will be lessened. Your stupidity in thinking of yourself as a doer will be smashed, and you will move closer towards samadhi. You will deepen the intensity of your meditation. Bear in mind, unconsciousness or unawareness will not do. If you go on remaining unaware and insensible to the workings of the mind, then your mind will repeat what it did yesterday.

Perhaps you do not know this, but your mind never does anything new or fresh. It simply goes on repeating what it has done before.Before you get angry tomorrow, tell your mind, "O mind, remember all the occasions you have become angry before." First, stop for a couple of seconds and remember the occasions of being

angry before, and then be angry. And I tell you, you will be unable to be angry then.

Whenever the mind becomes full of desires and passions, address your mind thus: "O my mind full of ego and desires, remember the desires you have cherished in the past." Keep your old experiences in mind before embarking on a new journey, then you will not start on yet another journey through the old. Your desire will stand amazed and puzzled! This much awareness is enough to break the mind's mechanical way of working.

When you become angry, look at your watch and tell yourself, "I shall be angry after one minute." When the second hand completes one circle, put down the watch and begin to be angry. You will not be able to be angry because the glimpse and reflection of all the past occasions of becoming angry will return to your mind during the sixty-second interval. All the past repentances, all the vows taken by you, all your decisions not to do that again, all these things will reappear in front of you, and you will be unable to become angry.

postpone the evil, and do the good immediately.One who is strong enough to wait for a moment will be unable to do an evil deed. To wait for a moment requires great strength. It is the greatest strength in this world to wait for a second when the eyes begin to turn red with blood and the fists begin to be clenched in anger.

The sage has created this sutra in order to make fun of himself -- to laugh at himself as well as at all of us. Enough for today.

-OSHO, The Heartbeat of the Absolute, Chapter #18
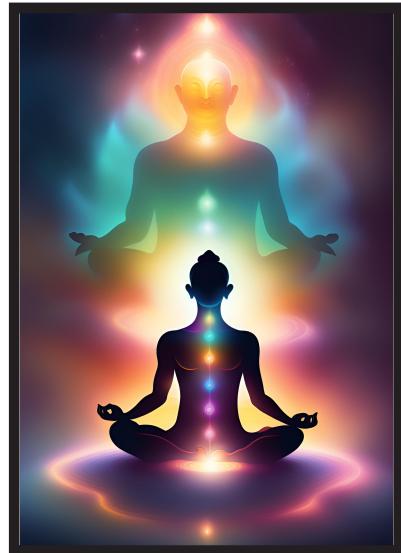
4

मृत्योर्मा अमृतं गमय

प्रश्नसार—

1. क्या मृत्यु-चर्चा मानसिक रुग्णता है?
2. ओशो कौन-सी मृत्यु सिखाते हैं।

प्यारे मित्रो,

सत्संग के इस सत्र में आप सबका स्वागत करता हूँ।

पहला प्रश्न : सभी संत मृत्यु की चर्चा क्यों करते हैं? क्या यह एक प्रकार की मानसिक रुग्णता का प्रतीक नहीं है?

वस्तुस्थिति ठीक विपरीत है। मृत्यु के नाम से डरना मानसिक रुग्णता का प्रतीक है, मृत्यु से आखें फेरना मानसिक रुग्णता का प्रतीक है। मृत्यु एक तथ्य है, उसे झुठलाने की कोशिश करना जरूर मानसिक रुग्णता का प्रतीक है। तुम किसी तथ्य को देखो अथवा न देखो, उससे तथ्य मिटता नहीं है। ये तो शुतुर्मुर्ग वाला तथ्य

हो गया। शुतुर्मुर्ग की कहानी तो सुनी है न। जब कोई दुश्मन उस पर आक्रमण करता है या उसके सामने आता है तो शुतुर्मुर्ग रेत में अपना सिर दबा लेता है। और उसका एक तर्क है स्वाभाविक कि जो दिखाई नहीं पड़ रहा, वह शत्रु है नहीं। जो दिखाई नहीं पड़ता, वह नहीं है यह उसका तर्क है।

हम मृत्यु से कितना ही बचना चाहें हम मृत्यु से बच न सकेंगे। मृत्यु है, तुम उसकी चर्चा करो या न करो उससे कोई भी फर्क न पड़ेगा। मृत्यु एक तथ्य है। अच्छा है उसकी चर्चा कर लो, अच्छा है उसका चिन्तन-मनन कर लो, अच्छा है कोई उपाय खोजो, मृत्यु के पार अमृत की खोज की तरफ आगे बढ़ने की कोशिश करो। मृत्यु को छिपाने से तो कुछ लाभ नहीं होगा। शुतुर्मुर्ग कितना ही रेत में सिर छिपा ले, दुश्मन उस पर और आसानी से आक्रमण कर सकेगा। लेकिन दुनिया में अधिकतर लोग मृत्यु के नाम से घबराते हैं। मरघट हम गाँव के बाहर बनाते हैं, ताकि उसकी याद ही न आए। होना चाहिए गाँव में ठीक बीच चौराहे पर, बाजार में मरघट, ताकि वहाँ से आते-जाते दिन में दस-पाँच बार नजर पड़े। लाशें जलती हुई दिखाई दें। हमें होश आए कि एक दिन हमारी भी लाश यहाँ जल रही होगी। तुम कहते हो कि मृत्यु की चर्चा मानसिक रुग्णता का प्रतीक है। मैं तुमसे कहना चाहता हूँ मृत्यु को भुलाने की कोशिश करना, छिपाने की कोशिश करना मानसिक रुग्णता का प्रतीक है। जिस व्यक्ति के भीतर मृत्यु का बोध उत्पन्न होता है, वह पहली बार मानसिक रूप से स्वस्थ होना शुरू होता है। और जो व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ हो जाता है, अंततः एक दिन वह आध्यात्मिक रूप से भी स्वस्थ हो पाता है। छुपाने से क्या होगा? नहीं जानने से क्या होगा? उससे कोई भी लाभ नहीं। अंततः हमें मर ही जाना है। अच्छा है उसको जान ही लो। सुनो यह गीत-

जिन्दगी सुबह से अब शाम हुई जाती है,
देर कुछ पल की बस ये साँस रुकी जाती है।
उससे मिलना न हुआ, जिससे मुझे मिलना था,
यूँ तो मिले खूब, मगर ये भी कोई मिलना था।

4

गाँठ जब लगती हो, तो डोर टूट जाती है,
जिन्दगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।
कोई मेरा न हुआ, न मैं किसी का हो सका,
चक्र मेरे भाग्य का इस जगह आ के रुका।
जहाँ फूल तो खिलते नहीं, कली बिखर जाती है,
जिन्दगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।
किसी का दोष नहीं, मैंने ही गलती की है,
सत्य को छोड़ जो सपनों से मोहब्बत की है।
जो कभी थी ही नहीं, वह दुनिया मिटी जाती है,
जिन्दगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।
असम्भव आस थी भरने की खुद को, भर न सका,
नियति शून्य है मेरी, मैं यह न दे सका।
आँख से आँसू की बरसात हुई जाती है,
जिन्दगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।

जिन्दगी तो रोज-रोज शाम होती चली जा रही है। सूर्योदय हो गया, समझो सूर्यास्त की शुरुआत हो गई। अब कितनी देर लगेगी, जन्म हो गया, मृत्यु की शुरुआत हो गई। तुम ऐसा नहीं सोचना मृत्यु एक घटना है, जो जीवन के अन्त में घटती है। मृत्यु हर पल घट रही है। हर बाहर जाती श्वास मृत्यु का प्रतीक है। तुम रोज-रोज थोड़े-थोड़े मर रहे हो। हम सोचते हैं, मृत्यु अंतिम घटना है, ऐसा नहीं। रोज-रोज तुम्हारा शरीर जर्जर होता चला जा रहा है, रोज-रोज वृद्ध होता चला जा रहा है, रोज-रोज बीमारी की सम्भावनाएँ बढ़ती चली जा रही हैं। ब्लड प्रेशर बढ़ता जा रहा है धीरे-धीरे, खून की नसें कड़ी होती जा रही हैं, कॉलेस्ट्रोल बढ़ता जा रहा है। हाँ, एक दिन अचानक हार्ट-अटैक होगा, लेकिन उसके पीछे कई सालों से धीरे-धीरे-धीरे सब चीजें खराब होती चली जा रही थीं। तुम ऐसा नहीं सोचना कि अचानक हार्ट-अटैक हो गया। उसके पीछे लम्बी प्रक्रिया जो कई वर्षों से चल रही थी, उसकी तैयारी चल रही थी। कैंसर अचानक नहीं हो गया एक-दिन। हाँ, एक

दिन तुम्हें पता चला, डाइग्नोसिस हुई। लेकिन प्रक्रिया बड़े लम्बे समय से चल रही थी। मृत्यु की उसी दिन शुरुआत हो गई, जिस दिन जन्म हुआ। मैंने सुना बर्नाड शॉ के एक मित्र को हृदय का दौरा पड़ा था। वह अस्पताल में उसे देखने गया, डॉक्टर उसकी जाँच कर रहे थे और डॉक्टरों ने घोषणा कर दी कि अब बचने की कोई सम्भावना नहीं है। नाउ वी आर हैल्पलैस–अब हम बिल्कुल असहाय हैं, अब कुछ नहीं किया जा सकता। बर्नाड शॉ ने लौटकर अपनी डायरी में लिखा संस्मरण कि डॉक्टरों ने अस्पताल में ऐसा-ऐसा वक्तव्य दिया और डॉक्टर के वक्तव्य को सुनकर मुझे ख्याल आया कि ये वाला वक्तव्य तो किसी बच्चे के पैदा होने पर दिया जा सकता है कि नाउ वी आर हैल्पलैस–अब ये जो बच्चा पैदा हो गया, एक दिन मरेगा ही, अब बचाने का कोई भी उपाय नहीं। ये वक्तव्य तो जन्म पर दिया जा सकता है। तो सूर्योदय हो गया, अब सूर्यास्त होने में ज्यादा देर नहीं लगेगी। तुम कह रहे हो कि मृत्यु की चर्चा ही क्यों करें। अभी तो हम जीवित हैं, अभी तो हम जवान हैं। मृत्यु की बात ही क्यों? अभी तो हम जीवन को भोगें। मृत्यु की चर्चा तुम्हें मानसिक रुग्णता का प्रतीक लगती है। मैं तुमसे कहना चाहता हूँ जिन्होंने मृत्यु के बारे में चिन्तन-मनन किया और न केवल चिन्तन-मनन किया उसके पार शाश्वत सत्य की खोज में जो उत्सुक हुए, वे ही सचमुच में जीवन को जी पाते हैं। तुम जीवन ठीक से अभी जी कहाँ रहे हो? जीवन को ठीक से जीने की कला भी तभी आएगी, जब तुम्हें मरने की कला आ जाये। बिना मरे, बिना जीते-जी मरे, जीने की कला भी नहीं आती।

ओशो कहते हैं 'धर्म है जीवन की कला' और यह भी कहते हैं कि 'धर्म है मृत्यु की कला'। और दोनों बातें एक साथ सच हैं, इसमें कोई विरोधाभास नहीं है क्योंकि दोनों बातें इकट्ठी ही सच हो सकती हैं। क्योंकि हम जिसे जीवन कहते हैं और जिसे मृत्यु कहते हैं, वे अलग-अलग नहीं हैं, एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से हैं। शतुर्मुर्ग बनने से कुछ भी न होगा। मौत आ रही है, तुम्हारे इरादे, तुम्हारे अरमान, जिन्दगी के बारे में, भविष्य के बारे में, अचानक एक दिन चकनाचूर हो जायेंगे। तुम्हारे लिए एक और गीत सुनाता हूं-

4

मुस्कान के इरादे अश्कों में ढल गए,
आए बहार बनने, खिजां बनके ढल गए।
सारे जहां को रोशन कर सकते थे जिस शमा से,
झुलसा दिया गुलशन को और खुद भी जल गए।
डूबे कभी यादों में, खोए कभी ख्वाबों में,
दो कलों में आज के बर्बाद पल गए।
हकीकत न जान पाए गम और खुशी की हम,
थे गुल गले लगाए, शूलों से छल गए।
मालूम ही न चल सका, कब मौत आ गई,
यूँ हौले-हौले हाथ से वर्षों निकल गए।

क्षण–क्षण तुम्हारे हाथ से खिसकते जा रहे हैं, रोज–रोज मौत के नजदीक आते जा रहे हो। इस तथ्य को झुठलाने से, भुलाने से कुछ भी न होगा। अच्छा है, तुम इसे ठीक–ठीक जान लो। मैंने सुना है सेठ चन्दू लाल के घर में रात को चोर घुसा। कुछ सामान गिर गया, आवाज हो गई, चन्दू लाल की नींद खुली। चन्दू लाल चिल्लाया जोर से–'चोर-चोर, पकड़ो-पकड़ो।' चोर निकलके बाहर भागा। मौहल्ला-पड़ौस के लोग जाग आए शोर–गुल सुनके। अंधेरी रात, आधी रात, वह चोर शहर की तरफ भागा। बहुत से लोग मोहल्ले के, जो आ गए थे बाहर अपने घरों से, उन्होनें चोर के पीछे–पीछे भागना शुरू किया। चन्दू लाल ने ठीक विपरीत दिशा में मरघट की तरफ भागना शुरू किया। लोगों ने कहा–'चन्दू लाल वहाँ कहाँ जा रहे हो? चोर यहाँ गया है शहर में।'' चन्दू लाल ने कहा–'अब आधी रात को इस घने अंधेरे में इतने बड़े शहर में चोर किस गली–कूंचे में खो गया, कहाँ उसे ढूंढेंगे। मैं ऐसी जगह जा रहा हूँ जहाँ सुनिश्चित रूप से एक दिन वह आ ही जायेगा। वह नहीं आएगा, चार लोग उसे उठाकर कंधे पर ले ही आयेंगे। वहीं पकड़ लूँगा बच्चू को। बचके जाओगे कहाँ? मौत से ज्यादा सुनिश्चित और कुछ भी नहीं, और सारी बातें अनिश्चित हैं। हो–न हो, कुछ पक्का नहीं। एक बात बिल्कुल ही सुनिश्चित है कि मृत्यु होगी। शतुर्मुर्ग की तरह मुँह छुपाने से कुछ न होगा। मरते समय बहुत पछतावा होगा।

'मालूम ही न चल सका कब मौत आ गई,
यूँ हौले-हौले हाथ से वर्षों निकल गए।'

अच्छा है बीच में ही जाग जाओ, बीच में ही चेतो, सचेत हो जाओ। अन्त में बहुत पश्चाताप होता है।

सुबह होती है शाम होती है,
बस यूँ ही जिन्दगी तमाम होती है।

लेकिन जिन्हें मृत्यु का स्मरण आ गया बीच में, उनकी जिन्दगी तमाम नहीं होती। उनकी जिन्दगी अमृत की खोज में लग जाती है। तुम मौत के प्रति सचेत होओ। समस्या को न जानने से समस्या हल नहीं हो जाती। मैंने सुना है नसरुद्दीन होटल में खाना-खाने गया। वेटर ने मेन्यू लाकर टेबिल पर रखा। नसरुद्दीन मेन्यू पढ़ने लगा। वह वेटर वहाँ पर खड़ा-खड़ा अपने सिर को खुजा रहा था, जोर-जोर से खुजा रहा था। खर्र-खर्र की आवाज आ रही थी। नसरुद्दीन बीच में सिर उठाकर देखता और फिर मेन्यू पढ़ने लगता। वह सिर अपना खुजाने में लगा है, बहुत जोरों से। फिर पाँच मिनट के बाद नसरुद्दीन ने अपनी नजर उठाई मेन्यू पर से और वेटर से पूछा-'क्या खुजली है?' वेटर ने कहा कि मेन्यू में देख लीजिए, अगर होगी तो मिल जायेगी।

किसी बात के प्रति सजग न होने से, समस्या को न जानने से समस्या हल नहीं होती। यदि पता हो कि खुजली है तो फिर कुछ किया जा सकता है, इलाज हो सकता है। तुम कह रहे हो कि मृत्यु की चर्चा ही क्यों करें? चर्चा तो हो ही गई तुम्हीं ने प्रश्न उठा लिया। तुम कितना छुपाओगे? तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता, भुलाया नहीं जा सकता। बीच-बीच में वह प्रगट हो ही जायेगा। अच्छा है झुठलाना बन्द करो। जागो, कुछ किया जा सकता है। खुजली अगर है तो फिर खुजली का इलाज हो सकता है। मृत्यु है तो मृत्यु के पार जाया जा सकता है। उपनिषद के ऋषि प्रार्थना करते हैं-'मृत्योर्मा अमृतं गमय'-मृत्यु से अमृत की ओर चलो। लेकिन पहले मृत्यु का तो अहसास हो। कौन अमृत की ओर जा सकेगा? केवल वही व्यक्ति, जिसे मृत्यु का बोध आना शुरू हो गया। उसके जीवन में ही वह सौभाग्य घटित होगा। आज तक जितने भी बुद्धत्व प्राप्त लोग हुए

हैं, वे सभी मृत्यु बोध के कारण ही जाग सके। इस बात को खूब अच्छे से स्मरण रखना। मृत्यु जगाने वाली है, जीवन सुलाने वाला है। जीवन मूर्छित करता है, मृत्यु जगाती है। धन्यभागी हैं वे, जो मृत्यु के प्रति जागते हैं। उनके जीवन में बुद्धत्व के फूल खिलने की संभावना प्रकट हो जाती है। जो मृत्यु के प्रति सोए हैं, वे सोये-सोये जीवन बिता देंगे और अंत में वे कहेंगे कि–

'सुबह होती है, शाम होती है,
बस यूँ ही जिन्दगी तमाम होती है'

चौंको, जागो...

जिस्म और रुह का रिश्ता भी अजब रिश्ता है,
उम्र भर साथ रहे, फिर भी तवारुफ न हुए,
रुह से तमन्नाओं का नकाब तो हटाओ जरा,
तवारुफ होने में फिर उम्र नहीं पल लगते हैं।

थोड़ी कामनाओं का, वासनाओं का जाल हटाओ। फिर अपनी आत्मा से परिचित होने में, अपने अमृत स्वरूप को जानने में उम्र नहीं पल लगते हैं। क्षण भर में जाना जा सकता है कि तुम अमृत के पुत्र हो। बस एक ही शर्त है–'तमन्नाओं का नकाब तो हटाओ जरा' वे जो तुम्हारी वासनायें हैं, भविष्य में तुमने फैला रखी हैं, उसका परदा उठे। 'घूंघट के पट खोल, तोहे पिया मिलेंगे'–भीतर अमृत तत्व विराजमान है। लेकिन उसे देने के लिए वही चलेगा जो मृत्यु के बोध से भरा है। मृत्यु का बोध आते ही भविष्य की कल्पनायें, योजनाएं, तमन्नाएं, अपने आप विदा हो जाती हैं। मृत्यु दी ऐन्ड बन जाती है। जिसे मृत्यु का एहसास नहीं है, वह ऐसे जीवन को जीता है जैसे अनंत काल तक उसे जीना है, जैसे सदा-सदा यहीं पृथ्वी पर रहना है। छोटी-छोटी चीज के लिए लड़ रहे हैं, झगड़ रहे हैं, उपद्रव कर रहे हैं। जैसे सदा-सदा यहीं होने को हैं। जिसे मृत्यु का बोध आ गया, वह जीवन की क्षुद्रताओं के पार उठना शुरू हो जाता है। एक ट्रान्सनडेन्स अतिक्रमण शुरू हो जाता है। क्षुद्र बातें फिर उसे नहीं उलझातीं। सामने मौत है, छोटी-छोटी बातों से क्या फर्क पड़ता है। मौत सब बराबर कर देगी। अच्छा है मौत के प्रति जागें ताकि अमृत की खोज शुरू हो। जैसे कि उपनिषद के ऋषि कहते हैं–मृत्योर्मा अमृतं गमय। मर कर

ही जाना जा सकता है अमृत को। लेकिन कौन-सी मौत? साधारण मौत नहीं, वह जो शरीर की होती है—ध्यान वाली मृत्यु, समाधि वाली मृत्यु। उससे गुजरकर ही पता चलता है कि मैं अमृत स्वरूप हूँ। संत कबीरदास ने कहा है—

कहन सुनन कछु नाहीं, नाहि कछु करन है,
जीते जी मरि रहे, बहुरि नहीं मरन है॥

कहते हैं न कुछ सुनने को है, न कुछ कहने को है, न कुछ करने को है। बस **'जीते जी मरि रहो'** ऐसे जिओ, जैसे कि मर गए। और तब **'बहुरि नहीं मरन है'** फिर ऐसे व्यक्ति को बार-बार नहीं मरना पड़ता है। ऐसा व्यक्ति आवागमन से मुक्त हो जाता है। मृत्यु फिर सदा-सदा के लिए ही समाप्त हो जाती है। क्योंकि वह अपने अमृत स्वरूप को पहचान लेता है। राधास्वामी मत के संत कहते हैं 'जीवित मरिए, भवजल तरिए' जीते जी मर रहो और यह भव सागर पार हो जाओ। संत गोरनाथ ने गाया है—

मरो हे जोगी मरो, मरो मरन है मीठा।
तिस मरनी मरो, जिस मरनी गोरख मरि दीठा।

ऐसी मौत मरो, जैसी गोरखनाथ मरे थे। ये गोरखनाथ, ये कबीर, ये राधास्वामी सम्प्रदाय के संत, ये कौन-सी मौत मरते हैं? ये जीते-जी ध्यान से गुजरते हैं, समाधि से गुजरते हैं जो कि एक प्रकार की मृत्यु है। सच पूछिए तो महा मृत्यु है। उसमें शरीर तो जीवित रहता है, लेकिन भीतर अहंकार मर जाता है। शरीर के साथ जो तादात्म था, मन के साथ जो तादात्म था, वह टूट जाता है। जब साधारण मृत्यु होती है तो केवल शरीर मरता है, तादात्म नहीं मरता वह तुम्हारे साथ अगले जन्म में चला जाता है। इसलिये शरीर वाली मौत किसी काम नहीं आती; फिर नया जन्म, फिर नया जीवन, फिर नई मौत। ऐसी मौत तो हजारों बार मर चुके हैं। संत पलटू दास ने कहा है—

'मरते-मरते सब मरें, मरे न जाने कोय।
पलटू जो जीवते मरे, सहज पलायन होय॥'

वह साधारण मौत तो सभी मरते हैं, उससे कुछ लाभ नहीं। उससे कोई समझ पैदा नहीं होती। 'पलटू जो जीवते मरे'—जो जीते जी मर जाता है, अपने

हाथों मर जाता है। यह साधारण आत्महत्या नहीं, वास्तविक आत्महत्या है–जीते–जी मर जाना। सामान्यत: हम जिसे आत्महत्या कहते हैं वह तो केवल देह हत्या है, उसमें आत्मा तो मरती नहीं, अहंकार तो मरता नहीं। पलटू, दादू, कबीर और गोरख जिस मृत्यु की बात कर रहे हैं, असली मृत्यु तो वही है। एक बार मरे तो फिर सदा–सदा के लिए मर गए। मृत्यु को झुठलाने से कुछ नहीं होगा। मृत्यु को जानो, मरने की विधि सीखो, कैसे मरना। तब तुम ठीक–ठीक कैसे जीना यह भी सीख पाओगे।

4

एक मित्र ने पूछा है–ओशो कहते हैं- मैं मृत्यु सिखाता हूँ। उनकी किताबों के नाम में मृत्यु की चर्चा होती है। अंग्रेजी में दो किताबें हैं–'दी आर्ट ऑफ डाइंग' और 'अन्टिल यू डाइ'। हिन्दी में भी 'राम द्वारे जो मरे', 'मरो हे जोगी मरो' और 'मैं मृत्यु सिखाता हूँ' इन तीन किताबों में मृत्यु का उल्लेख है। प्यारे सद्‌गुरु ओशो कौन–सी मृत्यु सिखाने की बात कर रहे हैं?

वही, जिसकी मैं अभी चर्चा कर रहा था। कबीर, गोरख, दादू, पलटू जिसकी चर्चा करते हैं, ओशो भी उसी मृत्यु की बात कर रहे हैं। सच पूछो तो धर्म का केन्द्रीय तत्व है मृत्यु की शिक्षा। जो व्यक्ति जीते जी मरना सीख गया उसने महा जीवन को पा लिया, क्योंकि तब उसे पता चलता है कि मृत्यु तो है ही नहीं। ये तो सिर्फ आभास होती थी। भीतर जाकर नहीं देखा था तो ऐसा लगता था कि मृत्यु होती है। दूसरों को मरते देखा था। एक बार खुद मर के देख लो; पड़े रहो ऐसे जैसे कि मुर्दे। सब क्रियायें छोड़ दो, सब क्रियाओं के पार चले जाओ और तब तुम एक अद्‌भुत अनुभूति करोगे। भीतर तुम्हारी चेतना पूरी की पूरी सिकुड़ जाएगी। जीवन अपने न्यूनतम पर, सूक्ष्मतम पर आ जायेगा और तब तुम्हें पता चलेगा कि यह जो चैतन्य है, यह कभी–भी नहीं मरता। न पहले कभी मरा, न भविष्य में कभी मरेगा, यह तो स्वयं शाश्वत जीवन है। हमने दूसरों के शरीरों को मरते देखा था, उससे हमें अनुमान हुआ कि शायद मृत्यु होती है। दूसरों के भीतर क्या हुआ था, यह तो हमने नहीं देखा। भीतर तो केवल स्वयं को ही जाना जा सकता है, दूसरे के भीतर क्या हो

रहा है उसका तो हमें कभी भी पता नहीं चलता। तो हमने मृत्यु के जो लक्षण मान रख हैं कि नब्ज चलना बन्द हो गई, कि हृदय धड़कना बन्द हो गया, कि श्वास बन्द हो गई, कि मस्तिष्क की गतिविधियां समाप्त हो गई, हम उसे मृत्यु समझ लेते हैं। जब स्वयं के साथ यही घटना घटती है, करीब-करीब श्वास ठहर-सी जाती है, हृदय की धड़कन बहुत धीमी हो जाती है ध्यान की गहराई में, मष्तिष्क बिल्कुल शांत-निर्विचार हो जाता है, भावनाओं के पार पहुँच जाता है हृदय, और तब भी तुम जानते हो कि तुम हो और तुम्हारा यह जानना पहले तो शरीर के भीतर से होता है फिर अचानक छलांग लग सकती है और तुम शरीर के बाहर होके भी जान सकते हो कि यह पड़ा है शरीर मुर्दे की भाँति और मैं इसका साक्षी-चैतन्य हूँ। मेरी कभी कोई मृत्यु नहीं हुई और न हो सकती है, मैं तो शाश्वत महा जीवन हूँ। फिर मृत्यु सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाती है और आवागमन से भी छुटकारा हो जाता है।

ओशो जब कह रहे हैं दी आर्ट ऑफ डाईंग वे इसी मृत्यु की कला की चर्चा कर रहे हैं। सूफी कहानी है 'अन्टिल यू डाई' जिस पर ओशो ने प्रवचन दिये हैं। जब तक तुम मर ही न जाओ, तुम्हें वह महा मूल्यवान अमृत तत्व नहीं मिलेगा। यह उस कहानी का सार है—जीते जी मरि रहो। संत दादू ने कहा है—

दादू मारग कठिन है, जीवित चले न कोय।
सोई चलि है बापरा, जे जीवत मृतक होय॥

कहते हैं अध्यात्म का मार्ग बहुत कठिन है। जीवित यहाँ न चल सकोगे। यहाँ पर तो केवल वही चल पायेगा, वही वीर पुरुष, जो जीते-जी मरने की कला सीख जाये, जो- **'जीवत मृतक होय'।**

संत मलूक दास ने कहा है—

'राम दुआरे जो मरे, वाको बहुरि न मरना होय।'

जो अपने भीतर, जहाँ राम-नाम की गूँज हो रही है, ओंकार का नाद हो रहा है, उस द्वार पर पहुँचकर अहंकार को छोड़ देता है—'राम दुआरे जो मरे', उसका अहम् यहाँ मिट जाता है। उस व्यक्ति की फिर और मृत्यु नहीं होती—'बहुरि न

मरना होय'। यह भीतर की मृत्यु कर्ता भाव की मृत्यु है, अहंकार की मृत्यु है। कैसे होगी यह मृत्यु? सारा कर्ता भाव छोड़ दो, कुछ भी न करो। शरीर पड़ा हो मुर्दे की तरह, मन हो गया हो शांत, श्वास हो गई हो बिल्कुल धीमी। अपने को भीतर सिकोड़ते जाओ, सिकोड़ते जाओ चेतना को अपनी संकल्प शक्ति से। याद रखना तुम्हारी संकल्प शक्ति से ही चेतना फैली है शरीर में। तुम्हारे संकल्प से, तुम्हारे प्रगाढ़ भाव से शक्ति वापिस खिंच जायेगी। तब तुम भीतर से अपने शरीर को जान सकोगे। और तब यदि तुम संकल्प करो कि मैं अपने शरीर के बाहर जाना चाहता हूँ, तो बाहर जाके भी अपने शरीर को देख सकोगे और तब तुम मृत्यु से सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाओगे।

कर्ता भाव छोड़ो, अहंकार भाव छोड़ो। ओशो ने एक बड़ी प्यारी कहानी कही है एक मूर्तिकार के सम्बन्ध में। अद्‌भुत मूर्तिकला उसे आती थी। जब वह वृद्ध होने लगा, उसने अपनी ही कई प्रतिमाएँ बनाकर रख दीं। बारह प्रतिमाएँ उसने बनाकर रख दीं और उसने सोचा कि जब मृत्यु आएगी, यमदूत आयेंगे मुझे लेने तो मैं भी इन प्रतिमाओं के बीच में छिपकर खड़ा हो जाऊँगा। मौत मुझे पहचान न सकेगी। और सचमुच ऐसा ही हुआ। मृत्यु के दूत आए और वे पहचान न पाए। बारह मूर्तियाँ और वह कलाकार भी उन्हीं के बीच में खड़ा। सब मूर्तियाँ इतनी जीवंत थीं यमदूत भी चकरा गए। किस को ले जायें? सिर्फ एक को ले जाने की आज्ञा थी। वे फिर वापिस ऊपर पहुँचे परमात्मा के पास। उन्होंने कहा कि मुश्किल हो गई। वहाँ तेरह लोग एक से खड़े हैं, हम किसको उठाकर लायें। हम पहचान नहीं पा रहे हैं कि कौन इसमें वास्तविक है, कौन मूर्तियाँ हैं? परमात्मा ने यमदूत के कान में कुछ कहा कि ये वाली तरकीब अपनाना तुम्हें पता लग जायेगा कि कौन जिन्दा है। परमात्मा ने यमदूत से कहा कि वहां कमरे में जाके घोषणा करना कि वाह, कितनी सुन्दर मूर्तियाँ हैं। बस केवल एक भूल रह गई। उस यमदूत ने कहा-लेकिन इससे क्या होगा? इससे मैं कैसे पहचानूँगा? परमात्मा ने कहा-तुम जाओ तो सही। तुम ये वाली तरकीब कर लो, तुम्हें तुरन्त पता चल जायेगा कि कौन वास्तविक कलाकार है वहाँ। यमदूत को भरोसा तो नहीं आया कि यह वाली विधि कैसे काम करेगी। फिर भी प्रभु ने कहा है वह आया, आके वह खड़ा हुआ, चारों तरफ उसने नजर घुमाई। तेरह मूर्तियाँ नजर

आ रही हैं। उसने कहा–'वाह! क्या कलाकारी है। एक–से–एक जीवंत मूर्तियाँ कोई कमी नहीं है। बस, सिर्फ एक कमी रह गई।' वह कलाकार तुरंत बोला कि कौन–सी कमी? यमदूत ने कहा कि बस यही कमी थी जो अपने कर्ता भाव नहीं छोड़ सके। यहाँ तुम्हारी गलती की तरफ इशारा किया, तुम बोल पड़े। यही कमी है, तुम अपना कर्ता भाव, अपना अहंकार नहीं छोड़ पा रहे। यमदूत ने कहा कि पहले मैं भी यही सोच रहा था कि कैसे पकड़ में आओगे। किन्तु परमात्मा ने कहा है तो जरूर कुछ रहस्य होगा। तुम पकड़ में आ गए। बस यही एक गलती रह गई।

असली मृत्यु अहंकार की मृत्यु है, कर्ता भाव की मृत्यु है। तो समस्त क्रियाओं से शून्य हो जाओ। शरीर के तल पर भी, मन के तल पर भी, भाव के तल पर भी, सब तलों पर छोड़ते जाओ क्रियायें। जब क्रियायें नहीं रहीं तो कर्ता भाव कैसे रहेगा? कर्ता भाव होने के लिए तो क्रियाएं आवश्यक हैं और तब तुम पाओगे उस निष्क्रिय जागरूकता की अवस्था में कुछ अद्‌भुत हुआ। तुम्हें स्वयं की पहचान हुई, आत्मज्ञान घटा और तुम मृत्यु के पार हुए। तो मृत्यु से मुँह छुपाने से कुछ न होगा। अच्छा है मृत्यु को जान ही लो। जब किसी की लाश जाते देखो तो अपनी मौत का स्मरण करना। सच पूछो तो हर मरता हुआ व्यक्ति तुमसे कहते हुए जाना चाहेगा कि–

जिन्दगी किराये का घर है, एक दिन निकलना होगा,
मौत जब पुकारेगी बाहर निकलना होगा।

मृत्यु से मुँह छुपाने से कुछ लाभ नहीं। मौत को जान लो और मैं तुमसे कहता हूँ मौत यूँ नहीं मिलती, मिलता है अमृत।

जिन्दगी किराये का घर है, एक दिन बदलना होगा,
मौत जब पुकारेगी बाहर निकलना होगा।

आज इतना ही। धन्यवाद।
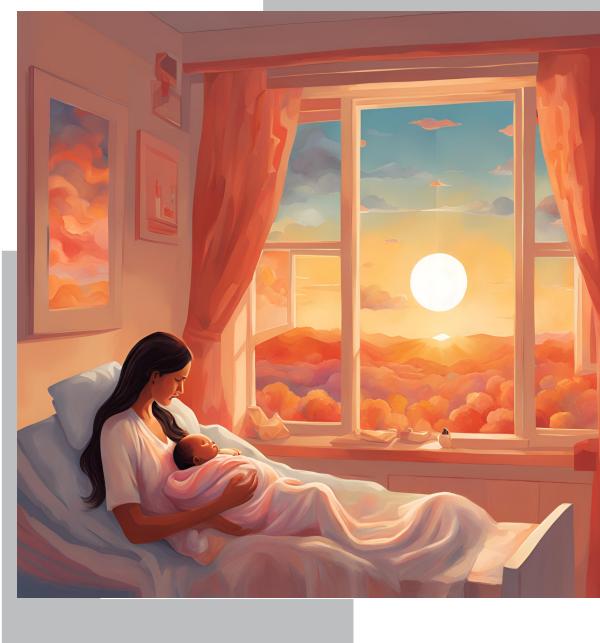
5

मृत्यु-भय से मुक्ति

प्रश्नसार-

1. भय से मुक्त होने के विषय में समझायें?
2. 'अमृत समाधि' में चमत्कार कैसे घटता है?
3. क्या अमृत समाधि में कोई अमृत पिलाते हैं?

प्रश्न-१ : सद्गुरु देव, कृपया भय से मुक्त होने के विषय में कुछ समझायें?

भय आदमी की मूलभूत समस्या है और सभी भय मृत्यु से संबंधित हैं। कोई भी भय, उसकी गहराई में, उसकी जड़ों को खोदना, तुम पाओगे मृत्यु को। तुम्हारा बैंक बैलेंस खो जाए या व्यापार असफल हो जाए इससे डर क्यों लगता है? क्योंकि तुमने धन में सुरक्षा मान ली है। तुम्हारे मित्र तुम्हें छोड़ गए, परिवार के लोग तुम्हारा

त्याग कर गए, कोई तुम्हारा न बचे, तो भय क्यों लगता है? क्योंकि तुमने माना था कि ये काम आयेंगे मुसीबत में। जहाँ-जहाँ तुम्हें भय लगता है, जानना वहाँ पीछे मृत्यु दस्तक दे रही है। तो सभी भय मृत्यु के ही भय हैं। कोई और भय है नहीं। भय हमारी मूलभूत समस्या है और यह जन्म से ही शुरू हो जाती है। जब बच्चे का जन्म होता है वह नौ माह तो माँ के पेट में बड़ा सुरक्षित था, उसे स्वयं के होने का बोध नहीं था। फिर अचानक उसका जन्म होता है। बड़ी पीड़ादायी स्थिति से उसे गुजरना होता है। बहुत भयभीत हो जाता है, उसके प्राण कंप जाते हैं। दूसरी तरफ घर के लोग खुशी मनाते हैं कि घर में बच्चे का जन्म हो रहा है। वे मिठाइयाँ बाँटते हैं, बाजे बाजते हैं, उत्सव मनाते हैं। लेकिन उस बच्चे पर क्या गुजर रही है, उसकी जरा सोचो। वह नौ महीने तक बिल्कुल मूर्छित अवस्था में माँ के गर्भ में सोया हुआ था। गहरी नींद, न उसे श्वास लेनी थी, न उसे रोजी-रोटी कमानी थी, न उसे पढ़ाई-लिखाई करनी थी, न उसे कोई चिन्ता फिकर थी दुनिया की। निश्चिंत, गहन मूर्छा में वह पड़ा हुआ था। फिर अचानक उसे बाहर धकाया जाने लगा। छोटे से मार्ग से वह बाहर निकल रहा है। दबा हुआ, घबराया हुआ, उसके पूरे प्राण कंप गए, ये क्या हो रहा है? उसे मृत्यु जैसी लग रही है, हम जिसे जन्म कह रहे हैं, उसके लिए वह मौत जैसा लग रहा है कि यह हो क्या रहा है? बाहर आके फिर उसे अपनी श्वास स्वयं लेनी पड़ती है। घबरा जाता है, रोता है, चीखता है। दूसरे लोग उत्सव मनाते हैं, छोटा बच्चा रोता है, चीखता है, उसके प्राण काँप रहे हैं, बड़ा भयभीत है।

तो जन्म की शुरुआत ही भय से होती है। अनजान लोग चारों तरफ उसे दिखाई पड़ते हैं। पहली बार तो उसकी आँख खुलती है, दृश्य दिखाई पड़ते हैं। ये सब क्या हैं? आवाजें सुनाई पड़ रही हैं, कुछ स्पर्श में आ रहा है, उसकी सारी इन्द्रियाँ सक्रिय हो गईं। उसकी घबराहट, उसकी बेचैनी, सब कुछ अनजाना है, अज्ञात है, अपरिचित है। उसे मृत्यु जैसा एहसास होता है। वह घबराहट हमारे प्राणों की गहराई में छिपी हुई है। जन्म के साथ ही हम मृत्यु भय से कंप रहे हैं। हम चाहे उस तरफ ध्यान दें या न दें, लेकिन हमारे प्राणों की बहुत-बहुत गहराई में मृत्यु का भय छिपा हुआ है। और सच पूछो तो इसे मैं एक दूसरा, एक विधायक शब्द देना चाहूँगा। मृत्यु भय जब हम कहते हैं, तो एक नकारात्मक-नैगेटिव कनुटेशन उससे

आता है। मैं कहना चाहूँगा रक्षा भाव—एक विधायक, एक पॉजिटिव कनुटेशन वाला शब्द। जिसे तुम भय कह रहे हो वह सच पूछो तो रक्षाभाव है, जीवन की रक्षा का उपाय। और बाकी जो षटरिपुएँ हैं—काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि अहंकार के विविध रूप, वे सब इसी मृत्यु बोध से पैदा हुए हैं, इस घबराहट से, इस बेचैनी से अपनी सुरक्षा करने के लिए। फिर कामनायें पैदा हुईं कि मैं ये पा लूँ, कि वह पा लूँ। फिर लोभ, कामनाओं का और बढ़ा हुआ रूप अपने जीवन को सुरक्षित करने के लिए। फिर यदि इसमें कोई बाधा पड़ती है कामनाओं में, लोभ में तो उसके ऊपर क्रोध पैदा होता है। ये सब जीवन के सुरक्षा के उपाय हैं। यदि क्रोध तुम्हारे भीतर न हो, हिंसा की प्रवृत्ति न हो तो तुम जीवित ही न बचते। कोई बच्चा जीवित न बचेगा यदि उसके अन्दर क्रोध की भावना न हो। उसके अन्दर जीने की कामना, जीवेष्णा न हो। तो उसके अन्दर कामना पैदा होती है, क्रोध पैदा होता है, लोभ पैदा होता है। फिर जो मिल गया है सुरक्षा का आधार, उसे वह जोर से पकड़ता है। मोह पैदा होता है—मेरी माँ, मेरे पिता, मेरा भाई, मेरा खिलौना, मेरा मकान। मोह उत्पन्न होता है क्योंकि जीवन के लिए यह सब जरूरी है। यदि बच्चे के माता-पिता न हों, उसकी देख-रेख करने वाला परिवार न हो तो वह जीवित नहीं बचेगा। स्वाभाविक है मोह उत्पन्न होता है। ईर्ष्या पैदा होती है, यदि किसी दूसरे को वह चीजें मिलने लगीं जो इस बच्चे को मिलनी चाहिए। समझो घर में दूसरा बच्चा पैदा हो गया, छोटा भाई पैदा हो गया, बड़ा भाई अपनी माँ की गोद में बैठने के लिए आता है, लेकिन माँ उसके छोटे भाई को गोद में लिए हुए है, बड़े भाई को ईर्ष्या पैदा होती है। वह छोटे भाई को धक्का मारके माँ की गोद से नीचे उतारना चाहता है कि यह मेरी गोद। यह उसके जीवन की सुरक्षा का सवाल है। यह ईर्ष्या कोई नकारात्मक बात नहीं है, बल्कि रक्षा भाव का एक हिस्सा है। तो मैं आपसे कहना चाहता हूँ, अतीत के धर्म गुरुओं ने जिन षटरिपुओं को, भय को, अहंकार को एक नकारात्मक भाव दिया था, मैं कहना चाहूँगा उसे नकारात्मक भावना से मुक्त करें। वह जीवन की सुरक्षा के लिए है। हाँ, यह बात जरूर है इससे और आगे जाना है। यह जरूरी है, आवश्यक है। अगर आवश्यक न होती तो यह प्रकृति पैदा ही क्यों करती।

ऐसा समझो एक बीज के ऊपर एक कड़ी खोल होती है। यह कड़ी खोल

बीज के भीतर के नरम भुज्ज पदार्थ को, अंकुर को सुरक्षित बचाए रखने के लिए है। जैसे अण्डे की कवच होती है, कड़ी कवच, वह भीतर के चूजे को, मुर्गी के बच्चे को बचाने के लिए है। अगर यह कड़ी कवच न हो तो मुर्गी का बच्चा कभी पैदा ही न हो सकेगा। हाँ, लेकिन दूसरी बात भी सच है इस चूजे को जन्मने के लिए इस अण्डे के कवच को टूटना होगा। इस बीज को अंकुरित होने के लिए पुष्पित और पल्लवित होने के लिए बीज के कड़े कवच को मिट्टी में गलना होगा, सड़ना होगा, मिट जाना होगा तो ही उस वृक्ष का जन्म हो सकेगा। ठीक ऐसे ही हमारे भीतर जो भय है, रक्षा भाव है और उसके साथ जुड़े हुए अहंकार के ये छः रूप, षटरिपुएँ जिन्हें कहा जाता है, ये भी हमारे भीतर के जीवन की सुरक्षा के इन्तजाम हैं। ये प्रकृति के उपहार हैं। इनके साथ जुड़े नकारात्मक भाव को छोड़ो। उससे फिर बड़ी मुश्किल खड़ी होती है।

ये रक्षा कवच हैं हमारे। लेकिन जब हम परिपक्व हो गए, मैच्योर हो गए, आध्यात्मिक अंकुर हमारे भीतर से आने को उत्सुक हो गया, तब जरूर इस कवच को तोड़कर हमें बाहर निकलना होगा। तब तक इसका होना भी जरूरी है और एक दिन इसका मिट जाना भी जरूरी है। अगर अण्डे की कवच टूटने से इन्कार कर दे, भीतर के चूजे की मृत्यु का कारण वह बन जायेगी। ठीक ऐसे ही ये जो मृत्यु का भय है और उससे उत्पन्न षट् रिपुएँ, यदि हम उनके बाहर न निकलें कभी तो फिर हम इनके भीतर ही मर ही जायेंगे। फिर हमारे भीतर की आत्मा जन्म ही नहीं पाएगी। हमारे भीतर का जो अमृत रूप है, उससे कभी हमारा परिचय नहीं हो पायेगा। तो एक सीमा तक ये उपयोगी हैं, एक सीमा के बाहर उपयोगी नहीं हैं। इस दृष्टि से अगर देखोगे तो भय के प्रति भी जो निन्दा का भाव है, षटरिपुओं के प्रति जो निन्दात्मक भाव तुम्हारे मन में बैठा है, वह मिट जायेगा।

तो मृत्यु के भय के बाद दो सम्भावनायें होती हैं, दो रास्ते खुलते हैं। एक रास्ता यह है कि हम भय की वजह से थरथरायें, काँपें, हमारे पैरों के नीचे की जमीन खिसक जाये, हम बेचैन और परेशान हो जायें, हम दुःखी हो जायें, पीड़ित हो जायें कि मौत होने वाली है—एक रास्ता यह है। दूसरा रास्ता है कि मृत्यु बोध के कारण, भय के कारण हम उस शाश्वत और अमृत की खोज में निकलें जो

हमारे भीतर छुपा है। वही सही रास्ता है, पहला रास्ता गलत है।

मृत्यु से घबराने से क्या होगा? तुम्हारी बेचैनी, तुम्हारी परेशानी, तुम्हारा तनाव और दु:ख, उससे तो कोई समस्या हल न होगी। मृत्यु तो रोज-रोज पास चली आ रही है। और कुछ लोग तो घबराहट में मरने से पहले ही मर जाते हैं। मैंने सुना है कि एक दिन यमराज एक गाँव में प्रवेश कर रहे थे, अपने भैंसे पर सवार होकर। दरवाजे पर ही गाँव का एक साधु बैठा हुआ था। उसने प्रणाम किया यमराज को और पूछा–'कुशल मंगल तो हैं?' उन्होंने कहा, 'हाँ कुशलमंगल हैं।' साधु ने पूछा–'कितने लोगों को लेने आयें हैं इस बार?' यमराज ने कहा कि दस लोगों को इस बार ले जाना है, एक हफ्ते के अन्दर-अन्दर। फिर एक हफ्ते के बाद जब यमराज पुन: उस गाँव के द्वार से बाहर जा रहे थे तो उनके साथ पाँच सौ आत्माएँ जा रही थीं। उस साधु ने फिर उनको प्रणाम किया और कहा कि आपने मुझसे झूठ क्यों बोला? पिछले हफ्ते गाँव में महामारी फैल गई, छूत की बीमारी। पाँच सौ लोग मर गए और आपने मुझसे कहा था कि केवल दस लोगों को ले जाने के लिए आए हैं। यमराज ने कहा कि मैंने झूठ नहीं कहा था। मैं तो दस लोगों को ले जाने के लिए ही आया था, बाकी के चार सौ नब्बे लोग तो डर के मारे मर गए, यह सोच के कि महामारी फैली है। वे अपने आप मरे, मैंने नहीं मारा। मैंने तो केवल दस लोगों को ही मारा है।

तो मृत्यु का जो भय है, उससे एक रास्ता तो यह जाता है कि हम भयभीत हो जायें। लेकिन हमारे भयभीत होने से कुछ होने वाला नहीं है। ज्यादा से ज्यादा यह होगा कि हम समय से पहले मर जायेंगे। लेकिन यह तो कोई उपाय न हुआ। उपाय तो केवल एक है कि हम इस भय, इस रक्षा कवच के बाहर आयें, बाहर आकर देखें। ओशो ने अंग्रेजी में एक प्रवचन माला दी है–'दि गूस इज़ आऊट'। बड़ी अद्‌भुत कहानी है झेन फकीर की। झेन फकीर अपने शिष्य को एक पहेली एक क्वॉन देता है कि एक काँच की बोतल है जिसका मुँह छोटा है, नीचे चौड़ी बोतल है। उस बोतल में एक गूज के अण्डे को, गूज एक पक्षी होता है जैसे समझो मुर्गा। एक मुर्गे के अण्डे को उसमें डाल दिया जाता है। अन्दर चूजा निकलता है, धीरे-धीरे वह बड़ा होता है। उसको भोजन-पानी सब कुछ उसी बोतल में दिया जाता है। और

अंततः एक दिन वह एक बड़ा मुर्गा बन जाता है। और झेन फकीर कहता है अपने शिष्य से कि अब तुम इस समस्या को हल करो। इस मुर्गे को बोतल से बाहर निकालना है लेकिन न तो काँच की बोतल टूटनी चाहिए और न ही मुर्गा मरना चाहिए। बड़ी मुश्किल हो जाती है, यह समस्या कैसे हल होगी? यही साधना है शिष्य की कि इस समस्या को हल करो। कैसे मुर्गे को बाहर निकालोगे कि मुर्गा भी न मरे और काँच की बोतल भी न टूटे। इसका कोई तार्किक समाधान तो नहीं हो सकता। लेकिन इस पर चिंतन करते-करते-करते-करते, क्योंकि चिंतन हो ही नहीं सकता, मन की वह चिंतन वाली प्रक्रिया रुक जाती है, मन शून्य हो जाता है और तब अचानक पता चलता है कि 'दी गूज इज़ आऊट'। वह जो मुर्गा है सदा-सदा से बाहर ही था। यह समस्या उस काँच के मुर्गे की नहीं। यह काँच की बोतल तो हमारा शरीर हुआ और चेतना, जिसको गूज कह रहे हैं। प्रतीकात्मक थी यह पहेली तो।

जब व्यक्ति के भीतर शरीर की, मन की सारी प्रक्रियायें रुक जाती हैं, तब उस साधक को पता चलता है कि अरे मैं तो बाहर ही हूँ, मैं तो विराट आत्मा हूँ। 'दी गूज इज़ आऊट, इट हैज बीन आलवेज़ आऊट'—वह तो सदा-सदा से ही बाहर था। भीतर हमारी कल्पना हो गई थी। काँच की बोतल में रिफ्लैक्शन बन रहा था। वह जो विराट आत्मा फैली हुई है वह भीतर दिखाई पड़ रही थी काँच के कारण। थी नहीं भीतर। और तब समस्या हल हो जाती है क्वान सॉल्व हो जाता है।

मैं आपसे यही कहना चाहूँगा कि यह जो रक्षा कवच है, इसके बाहर निकलना है। यह हो सकता है। हजारों साधकों को हुआ है, तुम्हें भी हो सकेगा। तो मृत्यु के इस भय को घबराहट और बेचैनी बनाने की बजाय, इस मृत्यु बोध को तुम जागरण की तरफ ले चलो। इस क्वान को हल करो। तब तुम जानोगे कि तुम अमृत स्वरूप हो। यदि यह नही जानोगे तब भी मृत्यु आएगी, फिर जन्मना होगा, फिर मरना होगा, फिर जन्मना होगा, फिर मरना होगा। अनन्त-अनन्त काल से यही चलता आ रहा और कब तक?

आज सुबह मैं एक चुटकुला पढ़ रहा था—एक गाँव का आदमी शहर में आया। उसका एक बहुत पुराना मित्र बीस साल पहले शहर में आकर बस गया

था। यह गाँव का आदमी उससे मिलने गया। वह जब उसके पास पहुँचा तो शहर का मित्र इसको देख कर रोने लगा। उसने पूछा कि रोते क्यों हो? उसने कहा कि मेरे जवान बेटे का कल ही हार्ट-फेल हो गया है। गाँव के आदमी को यह शब्द तो नहीं पता था कि हार्ट-फेल, लेकिन फेल-पास तो उसने सुन रखा था। उसने कहा कि भई घबराओ मत। हार्ट फेल हो गया तो क्या हुआ, अरे, अगले साल पास हो जायेगा। उस गाँव के आदमी को हार्ट-फेल तो नहीं पता था। उसने सोचा कि शायद किसी परीक्षा में फेल हो गया होगा। उसने समझाया कि अगले साल पास हो जायेगा, इसमें रोने की क्या जरूरत। यदि अमरत्व के प्रति नहीं जागे, हम फिर फेल हो जायेंगे। लेकिन परमात्मा बड़ा करूणावान है। अस्तित्व फिर तुम्हें नया जन्म दे देगा, जब फिर भी पास नहीं होगे, फिर फेल हो जाओगे तो फिर अगला जन्म मिलेगा, फिर अगला जन्म मिलेगा, मिलता ही चला जायेगा जब तक कि तुम पास ही न हो जाओ। तब तक बार-बार हार्ट-फेल होगा। यदि तुम रोकना चाहते हो कि हार्ट-फेल बन्द हो तो फिर पास हो जाओ।

5

यह जीवन एक पाठशाला है जहाँ मृत्यु का, मृत्यु के पार जाकर महाजीवन को जानने का पाठ सीखने के लिए आए हैं। जिन्होंने यह पाठ सीख लिया वह पास हो गए। 'बहुरि न मरना होय', फिर उनको दोबारा नहीं मरना पड़ता।

प्रश्न-2 : हमने सुना है कि 'अमृत समाधि' कार्यक्रम में सैंकड़ों साधक-साधिकाएँ अपनी देह से बाहर निकल चुके हैं। सद्गुरु देव, यह चमत्कार कैसे घटित होता है?

चमत्कार नहीं है शरीर से बाहर निकलना; चमत्कार यह है कि तुम भीतर कैसे घुसे हो। मैंने सुना है कि एक आदमी मच्छरदानी खरीदकर अपने गाँव वापिस आ रहा था। रास्ते में मिले नसरुद्दीन। उस आदमी ने अपनी मच्छरदानी की प्रशंसा करते हुए बताया कि जिस दुकान से यह मैंने खरीदी है, उस दुकानदार ने बताया है कि मच्छरदानी के छेद इतने बारीक हैं कि एक भी मच्छर इसके भीतर नहीं घुस सकेगा। नसरुद्दीन एकदम उदास हो गया। उसने कहा कि भाई ऐसी मच्छरदानी तुमने क्यों खरीद ली। जिसके अन्दर मच्छर तक नहीं घुस सकता, सोने के लिए तुम उसमें

भीतर कैसे घुसोगे? चमत्कार इसमें नहीं है कि साधक-साधिकाएँ हजारों की मात्रा में शरीर के बाहर निकल रहे हैं, चमत्कार यह है कि ये छः अरब लोग शरीर में घुसे कैसे?

बहुत आसान तरीका है, कठिन बात नहीं है। चमत्कार तो यह है कि सब लोग मानते हैं कि हम शरीर के भीतर हैं। 'दि गूज हैज बीन ऑलवेज़ आऊट' इतनी विराट आत्मा इस छोटे-से शरीर में कैसे समाएगी? भ्रम ही हो सकता है कि मैं शरीर के भीतर हूँ। यह वास्तविकता नहीं हो सकती और अगर भ्रम है तो उसको तोड़ा जा सकता है। बहुत आसान प्रक्रियायें हैं। ओशो ने सारी ध्यान की विधियों दीं, समाधि, की चर्चा की है, विस्तार से समझाया है। वे स्वयं शरीर से बाहर कैसे निकले थे, वह घटना भी उन्होंने कही है। एक रात पेड़ पर बैठे ध्यान कर रहे थे, अचानक शरीर नीचे गिर गया पेड़ की डाल से और चेतना ऊपर ही रह गई। और उन्होंने देखा कि अपनी ही नाभि से उनकी चेतना एक सिल्वर कॉड के द्वारा, एक रजत रज्जू से जुड़ी हुई है। पहली बार उन्होंने स्वयं को शरीर के बाहर जाना। फिर उन्होंने उसकी पूरी विधि समझाई है।

यहाँ अमृत समाधि कार्यक्रम में नौ दिनों में सैंकड़ों साधक-साधिकाएँ अब तक शरीर के बाहर जाने का अनुभव कर चुके हैं। हमने इसे नाम दिया है 'परा-मृत्यु योग'। उसकी बहुत-सी विधियाँ हैं। कुछ लोग आज्ञा चक्र से शरीर से बाहर निकलते हैं, कुछ लोग सहस्रार चक्र से और कुछ लोग नाभि चक्र से। सात चक्र हैं मनुष्य के शरीर में और किसी भी चक्र से बाहर निकला जा सकता है। सर्वाधिक लोग नाभि से, आज्ञा चक्र से या सहस्रार चक्र से बाहर निकलते हैं।

गीता दर्शन के आठवें अध्याय के चौथे और पाँचवें प्रवचन में ओशो ने कृष्ण का सूत्र समझाते हुए इस बात को विस्तार से बताया है कि कैसे मरना है। भीतर ओंकार के नाद को सुनते हुए और आज्ञा चक्र पर ध्यान रखते हुए जो व्यक्ति मरता है, वह सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाता है। जीते-जी भी इस प्रयोग को किया जा सकता है। उपनिषद के ऋषियों की तीन प्रार्थनाएँ हैं। एक है 'असतो मा सद्गमय' सत्य की ओर, सत्य यानी ओंकार-वह पदार्थ जिससे यह सारा जगत निर्मित है। दूसरी प्रार्थना है 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' आलोक की

ओर, प्रकाश की ओर चलो—भीतर का वह प्रकाश। जो व्यक्ति इन दोनों को जान लेता है, वह तीसरे सूत्र में प्रवेश कर सकता है 'मृत्योर्मा अमृतं गमय'। जिसने ओंकार को जाना, अंतस प्रकाश को पहचाना, उसके लिए शरीर से बाहर निकल जाना बहुत सरल है।

तो अमृत समाधि के पहले सुरति समाधि में ओंकार में डुबकी लगती है। उसके बाद निरति समाधि में अंतस आलोक में डुबकी लगती है। और तब चौथे तल के कार्यक्रम अमृत समाधि में शरीर के बाहर निकलना बायें हाथ की चुटकी बजाने के खेल जैसा है। बायें हाथ का खेल, कोई भी इसे कर सकता है, कोई कठिनाई नहीं। लेकिन उसकी पूर्व भूमिका होनी चाहिए। जो व्यक्ति ओंकार से परिचित नहीं है, जो भीतर के आलोक से परिचित नहीं है, वह शरीर के बाहर नहीं निकल पायेगा। क्रमशः सीढ़ी दर सीढ़ी जब हम चढ़ते हैं, वह प्रक्रिया बहुत सरल होती है।।

5

पीछे एक-दो बड़ी मजेदार घटनायें घटीं। नेपाल में हम प्रयोग करते थे अमृत समाधि का। एक व्यक्ति अपनी नाभि से बहुत तेजी से बाहर निकला, जैसे बन्दूक की गोली छूटती हो ऊपर। सीधा बादलों के ऊपर वह पहुँच गया। वहाँ से उसे दिखाई दे रहे थे हिमालय के हिमाच्छादित शिखर। हिमालय घूमने वहाँ पहुँच गया बर्फीले शिखरों के पास। वह तो भाव शरीर होता है, तो जहाँ तुम भाव करोगे तुरन्त पहुँच जाओगे। समय भी नहीं लगेगा, टिकिट भी नहीं लगेगी। जब वह पहुँच गए हिमालय के शिखर पर, वहाँ उसको बहुत जोर की ठंड लगी और तब उसे लगा कि गर्म कपड़े पहन लूँ कुछ। गर्म कपड़े तो वहाँ थे नहीं। तब उसे याद आया कि अरे मैं यहाँ कहाँ आ गया। मैं तो वहाँ ओशो गंगोत्री धाम चितवन में ध्यान कर रहा था। जैसे ही भाव किया तो वह वापिस अपने शरीर में प्रवेश कर गया।

एक और मित्र के साथ बड़ी अद्‌भुत घटना घटी। वे अपने गाँव पहुँच गए। बिहार से वह आए हुए थे, वे अपने गाँव पहुँच गए। वहाँ उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी सज-धज कर साड़ी-वाड़ी पहनके कहीं जा रही है, छोटा बच्चा भी तैयार हो रहा है। उन्होंने अपनी पत्नी को अवाज लगाई कि कहाँ जा रही हो? उसने कोई उत्तर ही नहीं दिया। वह अपनी कंघी कर रही थी, आईने के सामने खड़ी होकर कंघी

करती ही रही। इन सज्जन को बहुत गुस्सा आया कि मेरी बात का जवाब नहीं देती। दुबारा और जोर से चिल्लाकर पूछा। कोई उत्तर न आया। उन्होंने अपने बच्चे को अवाज़ दी, पाँच साल का बेटा लेकिन वह भी इनकी तरफ मुड़कर नहीं देख रहा। घर का जो नौकर था उससे कहा कि मामला क्या है? कोई मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देते? नौकर ने भी उनकी बात नहीं सुनी, वह भी अपने काम में लगा था तो लगा ही रहा। तब उनको ख्याल आया कि लोग मेरी आवाज सुन क्यों नहीं रहे। तब याद आया कि अरे, मैं तो वहाँ अमृत समाधि करने गया हुआ था, मैं यहाँ आ कैसे गया? मैं अशरीरी रूप से पहुँच गया हूँ यहाँ और मैं जो सोच रहा हूँ कि मैं कह रहा हूँ वह सिर्फ मैं सोच ही रहा हूँ। क्योंकि मुँह तो मेरे पास है नहीं। इसलिए इन लोगों को मेरी आवाज सुनाई नहीं पड़ रही। फिर उन्होंने भाव किया कि वापिस अपने शरीर में लौट चलूँ। फिर वापिस अपने शरीर में आए।

बड़ी ही मजेदार-मजेदार घटनाएँ घटती हैं शरीर के बाहर निकलकर। एक व्यक्ति ने शेयरिंग किया था कि उनका जब सूक्ष्म शरीर बाहर निकला। सूक्ष्म शरीर में विचार चलते हैं याद रखना, सूक्ष्म शरीर, उसमें मन साथ में होता है विचार चलते रहते हैं। तो सूक्ष्म शरीर घबरा रहा था कि अब वापिस लौटना कैसे होगा? थोड़ा डर भी लग रहा था शरीर के बाहर निकलकर। और तब सूक्ष्म शरीर के भीतर से एक और प्रकाशमय शरीर बाहर निकला। उपनिषद के ऋषि जिसे कहते हैं—आनन्दमय कोष। वह आनन्दमय कोष बहुत आनन्दित था बाहर निकल कर। वह बड़ी स्वतन्त्रता और फ्रीडम महसूस कर रहा था और वापिस लौटना नहीं चाहता था। ये सज्जन चार घंटे समाधि में रहे। वह आनन्दमय कोष में वापिस लौटना ही नहीं चाहता था और जो सूक्ष्म शरीर था वह परेशान हो रहा था कि वापिस चलो। चार घण्टे बाद वह सूक्ष्म शरीर उस आनन्दमय कोष को मना पाया कि वापिस चलो। अब वह आनन्दमय कोश सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया। फिर सूक्ष्म शरीर आया, भागा—भागा आया और अपने स्थूल शरीर में प्रवेश किया। ये जो सात शरीर हैं, ये कोई काल्पनिक बातें नहीं हैं। ये बिल्कुल वास्तविक हैं, अनुभव में आ सकते हैं। सूक्ष्म शरीर का अनुभव तो करीब-करीब सभी को हो जाता है अमृत समाधि में। आनन्दमय कोष का अनुभव एक मित्र को हुआ था,

उन्होंने ऐसा शेयर किया था।

अद्‌भुत दुनिया है हमसे ऊपर आकाश में। हम उठ सकते हैं, फैल सकते हैं, सूक्ष्म यात्रा कर सकते हैं, एस्ट्रल ट्रेवलिंग कर सकते हैं, बादलों की तरह आकाश में तिर सकते हैं। मैंने सुना है कि सेठ चन्दू लाल की शादी हुई। उनके पिता सेठ मक्खन लाल मारवाड़ी थे। जब चन्दू लाल की पत्नी घर में आई तो पहला ही दिन था। वह दही मथ रही थी मथनी से और उसने अपनी सास से कहा कि माता जी, दही मैंने मथ दिया है और मक्खन ऊपर तैरने लगा है। उसकी सास ने उसको डाँटा और कहा कि बहू शर्म नहीं आती। जो नाम तूने अभी-अभी लिया है वह तेरे ससुर का नाम है। सेठ मक्खन लाल चन्दू लाल के पिता का नाम था। ससुर का नाम मत लिया कर। बहूरानी ने कहा कि ठीक। दूसरे दिन फिर वह दही मथ रही थी। उसने कहा कि माताजी, दही मैंने मथ दिया है और दही के ऊपर ससुर जी तैर रहे हैं।

5

ससुर जी दही के ऊपर तैरे कि नहीं, लेकिन हवा में हम जरूर तैर सकते हैं। सूक्ष्म शरीर हमारा हवा में ऊपर उठ सकता है, उसका कोई वजन नहीं होता, वह तैर सकता है। आसमान में दूर-दूर की यात्रा कर सकता है। फिर अमृत समाधि का प्रयोग करवाते समय उसका भी ख्याल रखना पड़ता है कि कितनी दूर तक। कहाँ तक जाना है, कैसे वापिस बुलाना है? उसकी भी तरकीब है, उसकी भी विधि है कि कैसे वापिस लौटाना है। नहीं तो यह प्रयोग खतरे का है, कोई चला जाए तो चला ही जाए। मैंने सुना है कि एक दार्शनिक महोदय हमेशा ही चिन्तन-मनन में मग्न रहा करते थे और घर में क्या हो रहा है, उन्हें किसी चीज का पता ही नहीं होता था। एक दिन उनकी पत्नी ने आके कहा-'अजी सुनते हो! किताबों में ही उलझे रहते हो। तुम्हें कुछ पता है कि नहीं? अपना छोटा मुन्ना पिछले पन्द्रह दिन से चलना सीख गया है, पिछले पन्द्रह दिन से वह चल रहा है। वह दार्शनिक महोदय घबरा गए। उन्होंने कहा कि अरे पन्द्रह दिन में तो वह जाने कितनी दूर निकल गया होगा। तो कितनी दूर तक भेजना है, कहाँ से वापिस लौटाना है, उसका भी ख्याल रखना पड़ता है। मैंने सुना है कि नसरुद्दीन एक डॉक्टर के क्लीनिक में अपना इलाज करवाने गया था। डॉक्टर के चैम्बर से जब वह बाहर जाने लगा तो डॉक्टर ने उसका प्रिस्क्रीप्शन दे दिया, डॉक्टर ने कहा कि बाहर जो पेशेंट बैठे हैं, वहाँ आवाज लगाते

जाइएगा कि मिसेज शर्मा आइए। ऐसा कहते हुए चले जाइएगा। तो नसरुद्दीन ने वहाँ वेटिंग रूम में खड़े होकर कहा कि मिसेज शर्मा आइए और स्वयं बाहर निकल गया। दो किलोमीटर बाद पीछे से एक महिला ने आवाज दी और कहा कि बड़े मियाँ और कितनी दूर तक आपके साथ जाना होगा।

अमृत समाधि में उसकी भी विधियाँ हैं कि कहाँ से लौटना होगा। यह प्रयोग निश्चित रूप से खतरे का हो सकता है। इसलिए सार्वजनिक रूप से इस प्रयोग की चर्चा नहीं की जाती।

प्रश्न-3 : अमृत शब्द से हम सामान्यतः अर्थ लेते हैं कोई ऐसा अद्‌भुत पेय पदार्थ, जिसे पीकर हम कभी न मरेंगे। सद्‌गुरु देव, क्या अमृत समाधि कार्यक्रम में इस प्रकार का कोई अमृत पिलाया जाता है?

अमृत कोई कोका कोला की तरह कोल्ड ड्रिंक तो नहीं है। लेकिन अमृत में निश्चित रूप से कूलनैस का पता चलता है, शीतलता का अहसास होता है। भीतर एक शान्ति का, स्थिरता का, अक्षोभ का, अकंप का, शाश्वतता का, स्वयं के केन्द्र में स्थिर होने का, एक अद्‌भुत आंतरिक संतुलन का, हारा केन्द्र पर या तानदेन केन्द्र पर एहसास होता है। तानदेन और हारा जापानी-चीनी शब्द हैं। लाओत्सु की साधना अमृत की साधना है, लाओत्सु की सारी पद्धतियाँ अमृत को जानने की पद्धतियाँ हैं। यह कोई पेय पदार्थ नहीं है, यह अपने भीतर मौजूद है जिसे जाना जा सकता है।

मुझे स्मरण आता है कि ओशो जब लाओत्सु के ऊपर प्रवचनमाला दे रहे थे 'ताओ उपनिषद' की, तब उन्होंने उसका नाम रखा था 'अमृत स्टडी सर्किल' अमृत अध्ययन वर्तुल, जिस संस्था के अंतर्गत वे भाषण दे रहे थे। लाओत्सु की सारी साधना अमृततत्व की साधना है। विशेष प्रकार की श्वास पद्धतियाँ हैं जो नाभि केन्द्र के नीचे चोट करती हैं और वहाँ अमृत का एहसास होता है। उपनिषद के ऋषि कहते हैं 'अमृतस्य पुत्रः अहम्', अमृत के पुत्र हैं हम। जीसस कहते हैं मैं ईश्वर का पुत्र हूँ। अर्थ वही 'अमृत का पुत्र' हूँ। अपने भीतर उस अमृत को खोजना होगा और वह खोज बहुत आसान है। अमृत समाधि कार्यक्रम में उसी की साधना होती है।

मैंने सुना है एक आदमी एक चित्रकार की दुकान पर गया। एक बहुत सुन्दर तस्वीर उसको अच्छी लगी। एक बड़ी-बड़ी मूँछों वाले पहलवान जैसा दिखने वाले व्यक्ति की तस्वीर थी। खूब ऊँचा, तगड़ा पहलवान, बड़ी-बड़ी मूछें, चौड़ी छाती, बड़ी मजबूत मसल्स। उस आदमी ने पूछा कि ये पेंटिंग कितने की देंगे? उसने कहा कि ये पेंटिंग पाँच सौ रुपये की है। इस आदमी के पास कुल चार सौ नब्बे रुपये थे, दस रुपये कम थे जेब में। तो वह नहीं खरीद पाया, वापिस आ गया। यह व्यक्ति एक हफ्ते बाद अपने किसी मित्र के यहाँ गया और उसने वह वाली पेंटिंग उसके घर में टंगी देखी। उसने कहा–'अरे, यह पेंटिंग यहाँ?' मित्र ने कहा कि हाँ, यह मेरे स्वर्गीय पिताजी की तस्वीर है। उस आदमी ने कहा कि मेरे पास दस रुपये कम पड़ गए थे, नहीं तो ये मेरे स्वर्गीय पिताजी हो जाते।

वह अमृत, वह ईश्वर हमारा पिता है। थोड़ी-सी कमी पड़ गई, लेकिन फिर भी वह कमी पूरी की जा सकती है। थोड़ी-सी साधना, थोड़ा-सा श्रम, थोड़ा-सा संकल्प और अभूतपूर्व घटित होता है, स्वयं के अमृत तत्व का पता चलता है। अमृत की साधना में संकल्प और तथाता का विशेष महत्व है। इस सन्दर्भ में आपसे कहना चाहूँगा कि ध्यान साधना और समाधि की साधना में एक छोटा-सा भेद है। ध्यान साधना में हम चेतना को सिकोड़ते हैं और समाधि की साधना में चेतना को विस्तीर्ण करते हैं, फैलाते हैं। इन दोनों को ही जानना होगा। ध्यान में हम संकुचित होते हैं, एक बिन्दु पर सिकुड़ते हैं, वहाँ भी अमृत का अहसास हो सकता है। और समाधि में दूसरी प्रक्रिया अपनाई जाती है फैलने की, विराट के साथ एक होने की। वह एक दूसरा आयाम है। और इन दोनों ही आयामों से साधक को परिचित होना चाहिए।

महावीर की साधना पद्धति में उन्होंने बारह प्रकार के तप गिनाए हैं। उसमें अंतिम तप है 'कायोत्सर्ग' अपनी काया को छोड़ने की तैयारी, शरीर को उत्सर्ग करने की तैयारी। लेकिन उसके आगे एक और स्टैप है, वह है समाधि में फैलाव की, विस्तीर्ण होने की, विराट के साथ एक होने की भावना। 'कायोत्सर्ग' के और आगे की वह बात है क्योंकि महावीर ने केवल कायोत्सर्ग तक की ही साधना की। इसलिए उन्होंने आत्मा की तो चर्चा की लेकिन उन्होंने ब्रह्म की चर्चा छोड़ दी। क्योंकि ब्रह्म का अर्थ होता है विस्तीर्ण–दी एक्पैन्डिंग कांसियसनेस–फैलती हुई

चेतना। इसलिए महावीर की साधना पद्धति से चलने वाला व्यक्ति केवल आत्मज्ञान तक ही पहुँच सकता है, ब्रह्म ज्ञान तक नहीं। समाधि की साधना ब्रह्म ज्ञान की साधना है। तो संकल्प का भी और तथाता का भी, इन दोनों विपरीत बातों का परिपूरक ढंग से इस्तेमाल होना चाहिए। संकल्प भी जरूरी है और तथाताभाव भी जरूरी है।

आज सुबह कोई मित्र मुझे चुटकुला सुना रहे थे। एक प्रौढ़ व्यक्ति किसी प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र में जाता था। वहाँ वह बामुश्किल थोड़ा-बहुत लिखना सीख पाया था। बड़ी खुशी-खुशी अपने शिक्षक के पास गया और उसने कागज पर कुछ लिख कर कहा कि देखिए गुरुजी, मुझे लिखना आ गया है। गुरुजी ने कहा कि ठीक, पढ़के बताओ कि क्या लिखा है। उसने कहा कि क्षमा करें, अभी पढ़ना नहीं आया है। अभी मेरी लिखाई मैं खुद ही नहीं बाँच सकता, अभी सिर्फ लिखना ही आया है। पढ़ना भी आना चाहिए। चेतना को सिकोड़ना भी आना चाहिए, चेतना को फैलाना भी आना चाहिए। तो ध्यान साधना में चेतना सिकुड़ती है, समाधि की साधना में चेतना फैलती है। और दोनों कलाएँ एक दूसरे के परिपूरक हैं, विपरीत नहीं हैं। ये दोनों ही चीजें हम सीखें तब अमृत का पूरा-पूरा अहसास होता है। संकल्प के द्वारा सिकुड़ें, तथाताभाव के द्वारा फैलें। तब साधना पूरी होती है। ध्यान को भी हम जानें, समाधि को भी हम जानें। कायोत्सर्ग कला भी हमें आ जाये और उसके बाद विराट के साथ हम एक—अद्वैत की साधना भी हमें आ जाये। तो अमृत समाधि में अमृतत्व का एहसास दोनों तरीकों से कराया जाता है। कुछ लोगों के लिए सिकुड़कर जानना सरल है और कुछ लोगों के लिए फैलकर जानना सरल है। सर्वश्रेष्ट तो यही है कि दोनों ही बातें हमें आनी चाहिये।

प्यारे मित्रो, आज के सत्संग को यही विराम देते हैं। बहुत-बहुत धन्यवाद और शुभरात्रि।

मृत्यु-सत्य या भ्रांति

6

प्रश्नसार-

1. ओशो के वचन व 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' का अर्थ?
2. वृद्धावस्था में मृत्युभय से छुटकारा कैसे पाएं?
3. मृत्यु का भ्रम, देह को होता है या आत्मा को?

प्रश्न 1– कभी तो ओशो कहते हैं मृत्यु से बड़ा कोई सत्य नहीं है और कभी कहते हैं कि मृत्यु है ही नहीं, इसमें सत्य क्या है? सद्गुरु देव, इसी संदर्भ में कृपया समझाएं कि 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' का क्या अर्थ है?

ओशो के दोनों वचन सत्य हैं, मृत्यु जीवन का सबसे बड़ा सत्य है, यदि हमने देह ही को अपना जीवन समझा और मृत्यु से ज्यादा झूठ कुछ भी नहीं यदि हमने अपनी आत्मा को, चेतना को अपने स्वयं का होना जाना। जैसे हम कहते हैं एक

मकान तो मकान से हमारे दो तात्पर्य हो सकते हैं। एक तो मकान का अर्थ हुआ– दीवारें, दरवाजे, खिड़कियां, खंबे, पलंग, कुर्सियां इत्यादि। दूसरा अर्थ हो सकता है उस चार दीवारों के भीतर घिरा हुआ आकाश, वास्तव में जब हम कहते हैं कि हम इसके भीतर बैठे हैं तो क्या हम दीवारों में बैठे हैं, खंबों में बैठे, या खिड़कियों में बैठे हैं? नहीं हम उस आकाश में बैठे हैं, जो इन दीवारों से घिरा हुआ है। यदि इस आकाश को ही वास्तविक घर समझा तब तो यह अमृत है, अगर दीवार को ही सत्य समझा, घर माना तो वह तो गिरेगा, जो भी उपजा है वह नष्ट होगा, जो भी जन्मा है वह मरेगा। और ऐसा मत सोचना एक दिन मृत्यु आएगी 70-80 साल में। मृत्यु प्रति क्षण आ रही है। शायद आपको मालूम न हो मेडिकल ने खोजा है कि बच्चे के पैदा होते ही उसके मस्तिष्क से पाँच हजार न्यूरॉन शैल प्रतिदिन मरने लगते हैं। और मस्तिष्क का एक न्यूरॉन शैल भी नहीं बनता है। और रोज पाँच हजार न्यूरॉन शैल मरते चले जाएंगे। 60 साल की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते लगभग 1/5 यानि 20 प्रतिशत वजन समाप्त हो चुका होता है। मृत्यु क्षण-क्षण घट रही है। अंत में घटने वाली कोई एक अंतिम घटना नहीं है। जन्म से ही मौत की शुरुआत हो चुकी होती है। यदि तुमने शरीर को ही स्वयं का होना जाना तो यह तो मिटेगा ही। तब मृत्यु से बड़ा कोई सत्य नहीं।

अगर आपने भीतर के चैतन्य को, अपने स्वयं को, भीतर के साक्षी आत्मा को स्वयं का होना जाना तो वह कभी नहीं मिटता। उसका न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु। ओशो ने अपने एक वचन में कहा है कि 'Never Born Never Died' न कभी जन्में और न कभी मृत्यु हुई। भीतर का वह आकाश सनातन है, वह सदा-सदा था, सदा-सदा रहेगा। बहुत मकान बनेंगे मगर वे गिरेंगे। किला ही क्यों न बना लें वह भी गिरेगा ही, भले कुछ लंबे समय में गिरे। तो शरीर के लिए एक वचन सत्य है कि मृत्यु से बड़ा कोई सत्य नहीं, और आत्मा के लिए दूसरा वचन सत्य है, कि मृत्यु से बड़ा कोई झूठ नहीं।

'मृत्योर्मा अमृतं गमय' का अर्थ– देह से विदेह चैतन्य की तरफ चलो। मृत्यु से अमृत की तरफ अर्थात् शरीर के साथ हमारा जो आइडेंटिफिकेशन है उसे तोड़ो और कांसियसनैस के साथ तादात्म को जोड़ो। स्वयं को शरीर न मानो। नेति-नेति

करके छोड़ते चलो। जो भी तुम्हें दिखायी दे रहा है वह तुम नहीं हो, शरीर की गतिविधियों को, क्रियाओं को तुम देख सकते हो। तुम शरीर नहीं हो, मन में चल रहे विचारों को तुम देख सकते हो अर्थात् तुम मन भी नहीं हो। हृदय में चल रही भावनाओं को देख सकते हो, यानि तुम भावनाएं भी नहीं हो। शरीर, मन और हृदय के पार तुम कोई और हो जो इन तीनों का द्रष्टा है, इन तीनों का साक्षी है। उसके साथ अपना तादात्म जोड़ें वही अर्थ है मृत्यु से अमृत की ओर जाने का। स्वयं ओशो ने एक प्रवचन का अर्थ समझाया है कि 'उपनिषद की यह प्रार्थना संसार की सर्वश्रेष्ट प्रार्थना है। इतनी छोटी, इतनी गहरी, इतनी विराट और कोई प्रार्थना नहीं, इसमें सब आ गया है। पूरी प्रार्थना है 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' हे प्रभु! मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल। याद दिला दूं अंधकार अर्थात् अहंकार। लेकिन भीतर एक अंधकार है वह बाहर की रोशनी से नहीं मिटता। उस अंधकार का नाम अहंकार है उस अहंकार के कारण ही दिखायी नहीं पड़ता कि मैं कौन हूँ, यह मैं कि गलत धारणा ही हमें दिखायी नहीं देने देती उसको जो हम वस्तुतः हैं। इसलिए उपनिषद् के ऋषि की प्रार्थना ठीक है कि हे प्रभु! मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल। असतो मा सद्गमय, हे प्रभु! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चल। इसमें तर्क सारणी है। अंधकार से प्रकाश का अर्थ होता है:- अहंकार से आत्मा की ओर। आत्मा प्रकाश, अहंकार अंधकार। फिर दूसरा कदम असत्य से सत्य की ओर ले चल। अहंकार असत्य है, है नहीं, भासता है, कितना हम उछालते हैं अहंकार को। जो नहीं है उसके पीछे हम मर जाते हैं, कट जाते हैं, जरा किसी का धक्का लग जाए तुम्हें तो आप कहते हैं कि जानते हो मैं कौन हूँ। खुद भी पता नहीं कि तुम कौन हो? जिसको हमने मान रखा है अब तक मैं हूँ वह असत्य है, झूठ है, मान्यता मात्र है। इसलिए उपनिषद् की प्रार्थना कहती है– हे प्रभु! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चल, मैंने एक मिथ्या को 'मैं' मान रखा है। और उस मिथ्या में मेरा असली 'मैं' छुप गया है।

'मृत्योर्मा अमृतं गमय' हे प्रभु! मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो, मृत्यु अहंकार की ही होती है, मृत्यु अहंकार की ही हो सकती है, मृत्यु सिर्फ झूठ की ही होती है, सत्य की कोई मृत्यु नहीं होती। इसलिए इस प्रार्थना का अर्थ सिर्फ एक हैं

'अहंकार से निरअहंकार की ओर ले चल।' उसके यह तीन चरण हैं, तीन अभिव्यक्ति हैं, तीन द्वार हैं, अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर।

प्रश्न 2– वृद्धावस्था आने पर मुझे मृत्युभय सताने लगा है? सद्गुरु देव, कृपया बताएं इससे कैसे छुटकारा पाएं?

मृत्युभय अशुभ संकेत नहीं। किसी भी समझदार व्यक्ति को प्रज्ञावान व्यक्ति को मृत्यु का अहसास होगा तो भय तो लगेगा। सवाल मृत्युभय से छुटकारे का नहीं बल्कि इसके उपयोग का है। इस भय को उपयोग कर लो जगाने के लिए। मृत्यु ही जगाने वाला तत्त्व है अगर मृत्यु न होती, तो महावीर, बुद्ध, मीरा, नानक, ओशो न होते। आज तक जो भी इस पृथ्वी पर जागा है मृत्यु के कारण ही जागा है। जीवन तो सुलाता है, मृत्यु जगाती है। अच्छा है भय लग रहा है। यह भय तुम्हें चेताएगा जगाएगा। यह भय बता रहा है जीवन हाथ से खिसकता जा रहा है। और असली संपदा अभी तक पायी नहीं। व्यर्थ ही जिंदगी को गंवाते रहे। रोज-रोज मौत निकट चली आ रही है, लेकिन हम ऐसी गहन मूर्छा में जीते हैं कि हमें पता ही नहीं चलता। अक्सर मृत्यु के क्षण में ही लोगों को पता चलता है कि अभी तक वह जीवित थे। 70, 80, 90 साल गुजर गए। जीवन का कोई अहसास नहीं हुआ। मौत के समय पता चलता है कि अभी तक हम जिन्दा थे। और व्यर्थ ही जिन्दा थे, कुछ कमाया नहीं, बस गंवाया ही गंवाया है।

मैंने सुना है, भगवान शंकर जी के भक्त ने बहुत प्रार्थना की, तपस्या की, भगवान भोले शंकर प्रसन्न हो गए, उन्होंने कहा वरदान मांग ले। उस भक्त ने कहा– प्रभु! मृत्यु आने के पूर्व सिर्फ मुझे सूचना मिल जाए ताकि मैं चेत सकूं जाग सकूं। प्रभु ने कहा तथास्तु। अब तो वह निश्चित हो गया कि मृत्यु से पहले सूचना मिल जाएगी। उस समय का कुछ उपयोग कर लेंगे। जितना गहरा वह संसार में डूब सकता था, मूर्छा में खो सकता था उतना गहरा वह खो गया। समय बीतता गया। वह बूढ़ा हो गया। एक दिन अचानक यमदूत आकर खड़े हो गए। तब वह बहुत घबराया। उसने पूछा: आप कैसे आ गए? क्या भगवान शंकर से पूछ

कर आए हो? उनकी अनुमति है? उन्होंने कहा हां। फिर उसने शंकर को पुकारा। शंकर जी फिर प्रकट हो गए। उसने कहा– प्रभु! आप तो बड़े धोखेबाज निकले। आपने कहा था कि मरने से पहले सूचना भेजेंगे। आपने सूचना नहीं भेजी। शंकर जी बोले मैं निरन्तर तुझे संदेश भेजता रहा। याद कर जब तू 35 साल का हुआ था तेरे सिर में पहला बाल सफेद हुआ था। वह पहला संदेश मैंने भेजा था। लेकिन तू भी गजब का आदमी है तूने काली डाई करना शुरू कर दिया, मैंने फिर और तगड़ा संदेश भेजा। 40 वर्ष के हुए तो मैंने तेरे दांत खराब करने शुरू कर दिए। एक-एक दांत झड़ता गया धीरे-धीरे हर दो-चार साल में। तू गजब का आदमी। तू डेंटिस्ट के पास जाकर नए दांत लगवा लेता। मैं तो बराबर संदेश भेजता रहा, तेरी कमर झुक गयी, दाढ़ी पक गयी, आंखें कमजोर हो गयी, तूने जाकर चश्मा लगवा लिया। मैंने तेरे कान खराब कर दिए। तू अब तो समझ कि अब बुढ़ापा आ गया। मौत आने वाली है। तूने जाकर कान की मशीन लगवा ली। तू बड़ा चालबाज है। बड़ा धोखेबाज है। मैं तो बराबर संदेश भेज रहा था। प्रकृति की तरफ से तो निरन्तर संकेत आ रहे हैं, हम ही उन्हें झुठला देते हैं, काश! हम उन संकेतों को समझें, तब हमें ख्याल में आए की रोज-रोज मृत्यु नजदीक आती जा रही है, वह दिन करीब आता जा रहा है जब हमें विदा होना होगा, तब जीवन हमें सुला नहीं पाएगा। हम जाग जाएंगे। अगर मृत्यु से भय लग रहा है तो अशुभ नहीं है। शुभ हो रहा है। अगर मृत्यु से भय लग रहा है तो ध्यान के अतिरिक्त करने को और कुछ है ही नहीं। अब ध्यान में डूबो। अब संन्यास में रंगों, अब जीवन को समाधि में रूपांतरित करो, ताकि तुम्हारा शाश्वत से संबंध हो सके। ताकि तुम अपने भीतर उसको देख सको जो कभी नहीं मरता। उसको देखोगे तो ही भय जाएगा। उसको पहचानोगे तो ही भय जाएगा। अच्छा हुआ बूढ़े हो गए। अभी न होगा मेरा अन्त– जवानी तो इसी तरह की बातों में जीती है।

अभी न होगा मेरा अन्त, अभी-अभी तो आया है,
मेरे वन में मस्त बसंत। अभी न होगा मेरा अन्त।

जवानी तो झूठी बातें कहने में बड़ी कुशल है। बुढ़ापा नहीं छुपा पाता। कैसे छुपाए, पैर डगमगाने लगते है, शरीर अस्थिपंजर होने लगता है, श्वास लड़खड़ाने

लगती है। मौत की पहली पगध्वनि सुनायी देने लगती है। जिन्होंने जाना है, उन्होंने सदा ही तुम्हें जगाने की चेष्टा की है। जागो, मौत द्वार पर खड़ी दस्तक दे रही है। और कितने ही भागो कितने ही बचो, बच न पाओगे। लेकिन जो अपने भीतर जाता है वह पार हो जाता है। मृत्यु से छुटकारा संभव नहीं लेकिन मृत्यु का अतिक्रमण संभव है, मृत्यु तो घटेगी, बुद्ध को भी मरना होता है, महावीर और राम को भी, और कृष्ण को भी। मृत्यु से छुटकारा संभव नहीं है। लेकिन मरने की भी एक कला है जैसे जीने की कला है। मरने की कला है शांत मौन ध्यान में मरना। जीने की भी वही कला है। ध्यान से जिओ। जितने दिन शेष हैं ध्यान में जिओ। शांत, मौन, जागे हुए, ताकि शांत मौन जागे हुए मर भी सको। जो शांत, मौन मरने में समर्थ हो जाता है वह जानता हुआ मरता है कि मैं नहीं मर रहा। वह जागा हुआ मरता है कि देह झूठी, मन झूठा। पर मैं तो वही का वही हूं। चैतन्य तो वैसा का वैसा है। अछूता। चैतन्य की इस शाश्वतता को जिसने देख लिया उसके जीवन में आनन्द की वर्षा हो जाती है। फूल ही फूल झड़ जाते है अमृत के। देह से तादात्म मृत्यु भय का जन्मदाता है। चेतना से धीरे-धीरे मृत्यु-भय को विदा कर देता है। शाश्वत से परिचित करा देता है। तो सवाल मृत्यु से बचने का नहीं, भागने का नहीं बल्कि जागने का है। भय को मिटाना नहीं है, धन्यवाद दो इस भय को इसी की वजह से जागरण फलित होगा।

प्रश्न–3 सद्गुरु देव, मृत्यु का भ्रम, शरीर को होता है या आत्मा को?

न तो मृत्यु का भ्रम शरीर को होता है, क्योंकि शरीर तो जीवित रह ही नहीं जाता। उसकी स्वयं की तो कोई सत्ता रह ही नहीं गयी। वह तो मिट्टी हो गया, राख हो गया। और आत्मा को भी मृत्यु का भ्रम नहीं होता क्योंकि आत्मा देखती है कि मैं तो जीवित हूँ मुझे तो कुछ हुआ ही नहीं। मैं तो ज्यों की त्यों हूँ। मृत्यु का भ्रम एक सोशल फिनोमिना है। एक सामाजिक भ्रम है। अन्य लोग समझते हैं, कि यह आदमी मर गया उस आदमी को तो पता ही नहीं, शरीर को तो पता हो नहीं सकता, आत्मा तो बाहर निकल गयी। या ठीक होगा कि हम आत्मा की जगह सूक्ष्म शरीर कहें। वह जो सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से बाहर चला गया। वह तो ज्यों

का त्यों मौजूद है। उसे तो बल्कि आश्चर्य होता है, ये लोग रो क्यों रहे है? ये मेरी अर्थी क्यों बांध रहे हैं? मैं तो ठीक-ठाक हूँ, उसे तो कुछ पता नहीं, वह तो 'साक्षी मात्र' है, शरीर का जीवन, उसका जीवन नहीं है। उसकी तो स्वयं जीवंतता है, वह तो ज्यों का त्यों है।

हम शरीर में है जरूर लेकिन हमें जिस प्राण का, जिस चैतन्यता का अपने होने का अहसास होता है वह हमारी चेतना का अहसास है। भीतर से तो हम स्वयं आत्मा के समान ही जान रहे हैं, अभी भी चाहे हम साधक हों अथवा नहीं हों। गहराई में तो हम आत्मा ही हैं, शरीर के धोखे में पड़ गए। जैसे किसी दर्पण के सामने कोई वस्तु रख दो तो वह वस्तु दर्पण में झलकती है। भ्रम हो सकता है कि वह दर्पण के भीतर है, लेकिन है तो वस्तुतः वह बाहर। ठीक ऐसी ही आत्मा हमारी दर्पण के सामान है, उसके सम्मुख मन और शरीर हैं ये उसमें झलकते हैं। प्रतिबिंबित होते हैं। तब आभास होता है कि जैसे शरीर ही दर्पण है, या दर्पण शरीर है। जब यह तादात्म टूटता है, दर्पण अलग हो जाता है, शरीर मिट्‌टीवत् अलग पड़ा रह जाता है। दर्पण तो ज्यों का त्यों है अभी भी, जैसा पहले था। सिर्फ शरीर की छाया बननी बन्द हो गयी, तब बड़ी अड़चन हो जाती है। उस सूक्ष्म शरीर को बड़ा आश्चर्य होता है कि ये लोग रो क्यों रहे है? यह मेरी अर्थी क्यों बांधने लगे? ये श्मशान क्यों ले जाने लगे? इसलिए हिन्दुओं ने बड़ी अद्‌भुत विधि खोजी कि शमशानघाट में ले जाकर चिता पर लिटा दो, जल्दी से उसका शरीर ही नष्ट हो जाए ताकि यह सूक्ष्म शरीर देख ले कि मृत्यु हो चुकी है। और अब मैं यहाँ से जाऊं, अगली यात्रा पर चलूँ।

मुसलमान और ईसाई मृत शरीर को जलाने की अपेक्षा जमीन में दफना देते हैं इसलिए ईसाईयों, मुसलमानों में ज्यादा भूत-प्रेत होते हैं। वे जो सूक्ष्म शरीर हैं वे वहीं मंडराते रहते हैं। वे सोचते हैं कि मैं तो ठीक ठाक हूँ, इन्होंने मुझे गड़ाया क्यों? लम्बा समय लगता है यह भ्रम टूटने में कि हम मर चुके हैं। तो हम सामान्यतः जिसे मृत्यु कह रहे हैं, वह अन्य लोगों की भ्रांति है। घर, परिवार के लोग, समाज के लोग यह समझ रहे हैं कि वह मर गया। न शरीर को पता है मरने का, न सूक्ष्म शरीर को पता क्योंकि वह तो अभी भी पूरी की पूरी तरह जीवंत है। बल्कि शरीर के भीतर रहते

हुए तो बीमारियां थी, कष्ट थे, अब वे कष्ट भी विदा हुए, मुक्त हुआ वह। अब तो पहली बार और भी अच्छी अवस्था में है। शरीर से भी अच्छी अवस्था में। इसलिए उसे तो भ्रम हो नहीं सकता कि मैं मर गया। मरना दूसरों को पता चलता है। तिब्बत में लामा बारदो का प्रयोग करते हैं। मरते हुए व्यक्ति को वे सुझाव देते हैं, कि अब क्या-क्या होने वाला है? अब तुम्हारी मृत्यु हो रही है। ठीक से सुन लो, समझ लो, अब क्या होगा? यह शरीर छूट जाएगा। तुम बाहर निकल जाओगे, उसके बाद क्या-क्या होगा? कैसी-कैसी अवस्था से गुजरना होगा। लाखों जोड़े संभोग करते हुए दिखाई देंगे। तुम्हें अपने मां-बाप उनमें से चुनना होगा। तुम्हें कहाँ जाना है, क्या पाना है, किन परिस्थितियों में तुम ज्यादा सुखपूर्वक अगले जीवन में तुम रह सकोगे? उसके हिसाब से माता-पिता, परिवार का चयन करना। वह आगे का पूरा प्रोग्राम बताते हैं। कहाँ जन्म लेना, कैसे जन्म लेना। क्या तुम्हारे लिए उपयोगी होगा? तिब्बत में बारदो का प्रयोग करते हैं, तालि फिनाक भ्रांति कहीं से भी खड़ी न हो। ताकि जो थोड़ी देर तक चेतना रुक जाती है शरीर के पास, वह रुके नहीं। यहाँ रुकने का कोई फायदा नहीं। वह अगली यात्रा में जाए। मकान गिर चुका, मालिक को अगला मकान मिलेगा। तो मृत्यु एक सिर्फ सोशेमिना है। दूसरे समझते हैं वह मर गया। वास्तव में न शरीर को पता चलता है, न सूक्ष्म शरीर को पता चलता है कि वह मर गया।

नियति : विगत-कर्मों से बंधी?

प्रश्नसार-

1. भाग्यवाद व कर्मवाद के सिद्धांतों में कौन सही?
2. ईश्वर हमें इतना दुख क्यों देता है?
3. पाप कर्म और पुण्य कर्म की परिभाषा क्या?
4. ओशोधारा की अन्य सम्प्रदाओं से भिन्नता व उपयोगिता?

क्या है सही- भाग्यवाद या कर्मवाद?

पहला प्रश्नः सद्‌गुरु देव, आदिकाल से ही दार्शनिक एक प्रश्न पर चिंतन-मनन करते रहे हैं कि मनुष्य को भाग्य में भरोसा करना चाहिए अथवा कर्म में? कभी न कभी हर व्यक्ति के जीवन में यह सवाल अवश्य उत्पन्न होता है कि भाग्यवाद और कर्मवाद के इन दोनों सिद्धांतों में से कौन सा सही है?

मेरी दृष्टि में दोनो ही सही हैं। वास्तव में दोनों अलग-अलग नहीं, वरन्

एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हम कोई कर्म करते हैं, उसके परिणाम आते हैं; यह तो हम सब जानते हैं। मैं आग में हाथ डालूँगा तो मेरा हाथ जलेगा। कर्म का फल आएगा। इसे तो कोई सिद्ध करने की जरूरत नहीं। मैं लोगों से प्रेम करूंगा तो प्रत्युत्तर में मुझे प्रेम मिलेगा। मैं सबको गालियां देने लगूं तो मुझ पर गालियों की बरसात होने लगेगी। ऐसा होना लगभग नब्बे प्रतिशत सुनिश्चित है। हां, कुछ संभावना अपवाद की है। क्योंकि सब कुछ मेरे ही कर्मों से तो नहीं होता, दूसरों के कर्मों का संयुक्त फल भी घटेगा।

भाग्य कहा जाता है सामूहिक कर्म के परिणाम को। इस दुनिया में अकेला मैं ही तो नहीं हूँ और भी लाखों लोग हैं, असंख्य प्राणी हैं, विराट प्रकृति है, असीम जगत है जिसमें अनंत गतिविधियाँ चल रही हैं, बहुत कर्म हो रहे हैं........ उन सबका जो सामूहिक परिणाम है उसका नाम भाग्य है। तो कर्म के सिद्धांत में और भाग्य के सिद्धांत में, मैं कोई दुश्मनी नहीं देखता। दोनों एक–दूसरे के विपरीत नही, बल्कि परिपूरक हैं।

मैंने सुना है कि महान् दार्शनिक मुल्ला नसरुद्दीन सब्जी खरीदने के लिए बाजार जा रहा था। मस्जिद के पास से गुजरा। मस्जिद का मौलवी अजान देने के लिए मस्जिद की मीनार पर चढ़ा था। जब नसरुद्दीन वहाँ से गुजर रहा था, ठीक उसी समय, मौलवी का पैर फिसला और वह ऊपर से गिरकर नसरुद्दीन पर आ टपका। संयोगवश मौलवी का तो कुछ न बिगड़ा, बेचारे नसरुद्दीन की टांग टूट गई। नसरुद्दीन अस्पताल में भरती हुआ। लोग मिलने के लिए आए, पूछने लगे कि यह दुर्घटना कैसे हुई?

किसी मित्र ने सहानुभूति पूर्वक कहा– 'हड्डी टूटने से बहुत तकलीफ हो रही होगी?'

नसरुद्दीन ने दार्शनिक अंदाज़ में उत्तर दिया– 'उससे भी ज्यादा तकलीफ कर्मफल का सिद्धांत टूटने से हो रही है। कर्म किसी और ने किया, परिणाम हमको भुगतना पड़ा। न हम मस्जिद गए थे, न हम अजान देने मीनार पर चढ़े थे, हम तो अपनी पत्नी की आज्ञानुसार सब्जी खरीदने बाजार जा रहे थे....... चढ़ा कोई मीनार पर, टाँग किसी और की टूटी।' नसरुद्दीन बोला– 'इससे स्पष्ट

प्रमाणित होता है कि कर्म का सिद्धांत सरासर गलत है।'

जिन्दगी जटिल है और एक सरल से सिद्धांत में नहीं बांधी जा सकती। दार्शनिकों की सदा से कोशिश रही है कि एक छोटे से फार्मूला में सारी विरोधाभासी बातों को समाहित कर लें। पहले वे विपरीत सिद्धांतों का जाल खड़ा करते हैं, फिर विवाद करते हैं कि इनमें से क्या सही है और क्या गलत है? मैं जीवन को खंडों में बांटकर नहीं देखता। चीजें जुड़ी हुई हैं, संयुक्त हैं।

व्यक्तिगत रूप से केवल हमारे ही नहीं, बल्कि समष्टिगत रूप से जो परिणाम आएंगे, वे भी हमें भोगने पड़ेंगे। एक समूह का, समाज का, देश का, पूरे विश्व के कर्मों का मिलाजुला परिणाम हमें भोगना पड़ेगा। न केवल मनुष्य जाति के बल्कि अन्य प्राणियों के कर्मफल, प्राकृतिक घटनाओं के अच्छे या बुरे परिणाम भी हमारे जीवन को प्रभावित करेंगे।

यह विराट जगत एक 'बायोलॉजिकल यूनिट' है। मेरी अकेली कोई 'इंडिपेन्डेन्ट एग्जिसटेन्स' नहीं है, आप अकेले एक स्वतंत्र इकाई नहीं हैं। हम सब इस विराट अस्तित्व के हिस्से हैं। चांद-सूरज और ग्रह-नक्षत्रों पर जो हो रहा है, लाखों प्रकाश-वर्ष दूर किसी नीहारिका के तारों पर जो घट रहा है; वह भी हमें प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से स्पर्श कर रहा है। न सिर्फ वर्तमान, बल्कि अतीत की घटनाएं भी हमारे होने में उत्तरदायी हैं। यदि चार अरब साल पहले पृथ्वी न बनी होती, या दस अरब साल पहले सूरज का सृजन न हुआ होता, तो आज हम भी यहां न होते! अगर कल सुबह सूर्य नहीं ऊगेगा, तो आज की रात हमारी भी आखिरी रात्रि सिद्ध होगी।

भाग्य समष्टिगत कर्म के परिणाम को कहा जाता है। हमने पीछे जो कर्म किए हैं जिनको हम भूल भी गए, उनके भी परिणाम हमें भुगतने होंगे। उसी का नाम भाग्य है। तो भाग्य और कर्म के सिद्धांत में, मैं कोई भी विरोध नहीं देता। कर्म हम कहते हैं, एक व्यक्ति के द्वारा अतीत में किए गए एवं वर्तमान में क्रियान्वित कार्य को; और भाग्य हम कहते हैं पूरी समष्टि के द्वारा किए गए कार्यों व प्रकृति में घट रही प्रक्रियाओं के फल को। दोनों में जरा भी विरोध नहीं

है। दोनों एक–दूसरे के परिपूरक हैं। हमें एक नया शब्द गढ़ लेना चाहिए– 'कर्मभाग्यफलवाद'– वह ज्यादा सत्य के निकट होगा!

" भाग्य का कर्म से रिश्ता "

एक मित्र ने और इसी प्रकार का सवाल पूछा है कि भाग्य का कर्म से क्या रिश्ता है?

रिश्ता दो चीजों के बीच होता है। भाग्य का सिद्धान्त और कर्म का सिद्धान्त एक दूसरे के विपरीत नहीं हैं बल्कि एक दूसरे के परिपूरक हैं। समझो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सामान्यत: हम जिसे भाग्य कहते हैं वह मिश्रण है तीन–चार प्रकार के कर्मों का। पहला, हमारे व्यक्तिगत वर्तमान के कर्म। आज हम नीम के बीज बो रहे हैं तो कल नीम के फल आयेंगे। आज हम आम के बीज बो रहे हैं कल आम के फल आयेंगे। हम अपना भाग्य स्वयं निर्माण कर रहे हैं। हमारे वर्तमान के कर्म, हमारे भविष्य का भाग्य बन रहे हैं। दूसरा, हमारे स्वयं के पिछले कर्म। उनका परिणाम हमें या तो आज भोगना होगा या आगे भोगना होगा। पीछे हमने जो किया है, उससे हमारी करने की एक आदत बनी है। उस आदत से मजबूर होकर हम आगे भी वैसे ही कर्म किए चले जाऐंगे और एक शृंखला, एक सिलसिला चलता रहेगा। तो पिछले जो कर्म हैं उनका भी परिणाम आ रहा है अथवा आयेगा, उससे हमारा प्रारब्ध निर्मित हो गया। तीसरा, सामूहिक कर्मों का परिणाम भी हमें भोगना होगा। यद्यपि वह हमारा व्यक्तिगत कर्म नहीं है किन्तु इस दुनिया में हम अकेले नहीं हैं। हम एक समाज में, भीड़ में रह रहे हैं। 6 अरब लोग और भी इस दुनिया में हैं। वे सब कुछ न कुछ कर रहे हैं। इन सबके कर्मों का जो संयुक्त परिणाम होगा, वह प्रत्येक व्यक्ति को भोगना होगा। समझो कि पिछले कुछ सालों में व्हीकल्स की गिनती बढ़ती जा रही है, पेट्रोल जल रहा है, धुआं ही धुआं हवा में फैल रहा है, पॉल्यूशन हो रहा है, हम जहरीली हवा में श्वास ले रहे हैं। अब इसका जो दुष्परिणाम होगा वह हमें भोगना होगा। यद्यपि न मैंने कार की ईजाद की, न मैं कार चलाता हूँ, न मैं पैट्रोल जला रहा हूँ। लेकिन इस दुनिया में अकेला मैं ही

तो नहीं हूँ। तो सामूहिक कर्मों का परिणाम भी हमें भुगतना होगा। अभी हम यहाँ बैठे हैं बुद्धा हाल में समाधि करने के लिए, कोई आतंकवादी बम फोड़ दे, हम सब समाप्त हो जायेंगे। यद्यपि उस आतंकवाद में हमारा सीधा कोई हाथ नहीं है। उस बम का निर्माण हमने नहीं किया। हम तो ध्यान करने आए थे, हमारे कर्म किसी और दिशा में गतिमान थे। किन्तु अन्य लाखों व्यक्ति भी कर्म कर रहे हैं, उनके भी फल हमें भोगने होंगे क्योंकि हम समाज के हिस्से हैं।

तो तीन प्रकार के कर्म हुए; एक, हमारा स्वयं का व्यक्तिगत, वर्तमान का कर्म; दूसरा, हमारा व्यक्तिगत अतीत का कर्म और ज्ञानीजन कहते हैं न केवल इस जन्म का बल्कि पिछले जन्मों का भी कर्म; और तीसरा, सामूहिक कर्म–वर्तमान के अथवा अतीत के। और अंतिम बिन्दु मैं कहना चाहूँगा यह अस्तित्व एक सुनिश्चित दिशा में धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है, घटनाएं घट रही हैं। उन घटनाओं का परिणाम भी हमारे जीवन को प्रभावित करेगा। समझो आज से 10 अरब साल पहले सूरज का निर्माण हुआ था। चार अरब साल पहले पृथ्वी सूरज से टूटकर बनी थी। आज भी पृथ्वी के गर्भ में लावा उबल रहा है। ज्वालामुखी फट सकता है कभी भी, भूकम्प आ सकता है। इन घटनाओं का हमसे सीधा संबंध नहीं है लेकिन हम इस पृथ्वी के निवासी हैं और पृथ्वी में जो कुछ घट रहा है, जो पीछे घटा है उन सबके परिणाम आगे आयेंगे। कुछ सालों पहले भूकम्प आया था गुजरात में, बहुत लोग प्रभावित हुए। खूब जन-धन की हानि हुई। यद्यपि उन लोगों का भूकम्प से कोई सीधा लेना-देना नहीं है लेकिन हम इस अस्तित्व के एक हिस्से हैं और इस अस्तित्व में जो भी हो रहा है उसका परिणाम भी हमारे जीवन को प्रभावित करेगा। हम उससे अप्रभावित नहीं रह सकते। तो इन सब घटनाओं का मिलाजुला जोड़ भाग्य कहलाता है। तो स्मरण रखें इसमें से कुछ बातें हमारे हाथ में हैं, कुछ बातें हमारे हाथ में नहीं हैं। पृथ्वी में क्या हो रहा है, सूरज में क्या हो रहा है, उस विराट ब्रह्माण्ड में क्या हो रहा है, वह हमारे हाथ में नहीं है। सौर्यमंडल में क्या हो रहा है– कल को कोई एक बड़ी उल्का आकर पृथ्वी से टकरा जाए, सारी पृथ्वी नष्ट हो सकती है। अतीत में

बहुत बड़ी-बड़ी उल्काएं गिरती थीं। धीरे-धीरे उनकी गिनती कम होती गई। पता नहीं भविष्य में क्या होगा, हम नहीं जानते। सूरज की गर्मी क्रमशः कम होती जा रही है। निश्चित रूप से एक समय आयेगा जब सूरज की ऊष्मा इतनी कम हो जाएगी कि पृथ्वी पर जीवन न हो सकेगा। पृथ्वी का सारा जीवन नष्ट हो जाएगा। तो अस्तित्वगत घटनाएं, सामूहिक मनुष्य जाति के कर्म-पिछले और वर्तमान के और हमारे स्वयं के व्यक्तिगत कर्म-वर्तमान के और पिछले, उन सबका मिलाजुला नाम भाग्य है। निश्चित रूप से हमारे कर्म इसमें एक महत्वपूर्ण हिस्सा निभाते हैं। और वही केवल एक चीज है जिसे हम बदल सकते हैं बाकि की चीजें तो हमारे वश में नहीं हैं। वर्तमान के कर्म जो हम कर रह हैं केवल वे हमारे वश में हैं।

तो इस दृष्टि से देखो तब तुम पाओगे कि भाग्य के सिद्धान्त और कर्म के सिद्धान्त में कोई विरोध नहीं हैं। सब कर्मों का मिला-जुला असर ही भाग्य कहलाता है। यदि भाग्य को अगर बदलना है, जितना हम बदल सकते हैं, वह हमें स्वयं से ही शुरू करना होगा। ओशो सिद्धार्थ जी ने बड़ा प्यारा गीत लिखा है:

'हम अपना लिखते भाग्य स्वयं, पर समय बीत जब जाता है
खुद का ही लिखा न पढ़ पाते, अक्षर धुंधला हो जाता है।
इसलिए नियति को मत मानो, अपना हस्ताक्षर पहचानो
दायित्वम् शरमण् गच्छामि, भज ओशो शरणम् गच्छामि।
हम जो भी करते कर्म यहां, फल पीछे-पीछे आता है
पुरूषार्थ काल क्रम में पककर, प्रारब्ध अटल बन जाता है।
है रची तुम्हीं ने आत्मकथा, मत कहो विधाता ने लिखा
पुरूषार्थम् शरणम् गच्छामि, भज ओशो शरणम् गच्छामि।

भाग्य का एक हिस्सा कर्म है। अतीत में दो प्रकार के लोग रहे-कुछ भाग्यवादी, कुछ कर्मवादी। कर्मवादी कहते थे कि सब कुछ हमारे हाथ में है, हमारे कर्मों पर निर्भर है और भाग्यवादी कहते थे कि सब कुछ विधाता की तरफ से सुनिश्चित है। ये दोनों आधी-आधी बात कहते थे। दोनों में अधूरी सच्चाई थी।

मैं आपको पूरी बात कहना चाहता हूँ। कुछ बातें हमारे हाथ में हैं उन्हें हम बदल सकते हैं। कुछ बातें हमारे हाथ में नहीं हैं, उनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए कर्मवाद और भाग्यवाद—मैं इस प्रकार के दो अलग-अलग विपरीत सिद्धान्त नहीं देता हूँ, दोनों जुड़ी हुई बातें हैं एक दूसरे से।

7

ईश्वर दुख क्यों देता है?

दूसरा प्रश्नः सद्‌गुरु देव, ईश्वर ने यह दुनिया बनाई, मनुष्य जाति को बनाया, फिर वह हमें इतना दुख क्यों देता है?

जगाने के लिए। यदि सुख स्वप्न चल रहा हो तो हम सदा-सदा सोए ही रहेंगे। यदि जीवन में दुख न हो तो धर्म की भी कोई जगह न रह जाएगी। दुख हमारा दुश्मन नहीं है। दुख हमें चौंकाता है, हमें जगाता है, हमारे भीतर विवेक और प्रतिभा को पैदा करता है, उस दुख से मुक्त होने का हम उपाय ढूँढते हैं उसी से तो सारा विकास होता है। दुख से दोस्ती काम आएगी, उसे निगेटिव ढंग से मत लेना।

गम राह में खड़े थे खुशी भी कभी रही
इस बेवफा से अपनी बड़ी दोस्ती रही।
उनसे मिलन की शाम घड़ी दो घड़ी रही
और फिर जो रात आई तो बरसों खड़ी रही।
क्या मेरे साये दर्द ने जाते हुए कहा-
कल फिर मिलेंगे दोस्त अगर जिंदगी रही।
बस्ती उजड़ गई भी तो किंकर हरे रहे
दर बंद हो गए भी तो खिड़की खुली रहे।
'अख्तर' अगर चारों तरफ तेज धूप थी
दिल पर ख्याले यार की शबनम पड़ी रही।

दु:ख से जागना। दोस्ती का अर्थ चिपकना मत, दोस्त से शिक्षा गृहण करना। ख्याले यार यानी परमात्मा का सुमिरन शीतलता देगा, उसे खोजना। पशुओं ने, पक्षियों ने दुख से मुक्त होने का उपाय नहीं किया, वे उसके प्रति जागरूक नहीं हैं इसलिए उनका कोई विकास भी नहीं हो पाया। मनुष्य जाती अकेली विकसित हो रही है। उसका कारण? उसका कारण है वे सुख, वे पीड़ाएं, वे कष्ट यदि वे न होते तो हमारी बुद्धि विकसित भी न होती। हम भी जानवरों की तरह ही जीते। तो दु:खों को भी अपना शत्रु न समझना, वह हमें जगाने के लिए हैं, हमारी विकास की प्रक्रिया का हिस्सा हैं। और जब इस

भाँति तुम देखोगे तो ईश्वर को धन्यवाद दोगे। अभी तुम्हारे प्रश्न में शिकायत छुपी है, नाराजगी छुपी है। काश तुम दुख की इस गुणवत्ता को देख पाओ, तब तुम अस्तित्व के प्रति धन्यवाद से भरोगे, दुखों के लिए भी।

क्या है पाप और क्या है पुण्य?

तीसरा प्रश्नः पाप कर्म और पुण्य कर्म की परिभाषा क्या है? सद्‌गुरु देव, क्या सच बोलना सदा ठीक और असत्य-भाषण करना हमेशा गलत है?

पाप और पुण्य कर्म से तय नहीं होता, अंदर की भावदशा से तय होता है। ऊपर-ऊपर से कर्म एक जैसे दिखाई पड़ते हैं, किंतु भीतर-भीतर हमारी भावदशा, हमारा इरादा क्या है, हमारा इनटैंशन क्या है उस पर निर्भर होगा। हमने किस चैतन्य की अवस्था से वह कर्म किया, उससे निर्धारित होगा कि वह पाप है या पुण्य? ऊपर-ऊपर से तय नहीं किया जा सकता कि ऐसा-ऐसा करना पाप है, कि ऐसा-ऐसा करना पुण्य है।

ओशो ने नसरुद्दीन का एक बड़ा मज़ेदार किस्सा सुनाया है कि नसरुद्दीन जिस देश में रहता था, वहाँ के बादशाह से उसकी मित्रता थी। एक दिन बादशाह ने कहा कि नसरुद्दीन मैंने तय किया है कि जो भी आदमी झूठ बोलेगा उसको फाँसी पर चढ़ा दिया जाएगा ताकि हमारे देश में सारे नागरिक पुण्यात्मा हो जाएँ, महात्मा हो जाएँ, सत्यावादी हो जाएँ। हर झूठ बोलने वाले को फाँसी की सजा मिलेगी।

नसरुद्दीन ने सम्राट से कहा कि ऐसा संभव नहीं है क्योंकि यह तय करना बहुत मुश्किल है क्या सत्य है और क्या असत्य है!

बादशाह ने कहा कि इसमे कौन सी कठिनाई है? हमारे दरबार में एक दर्जन न्यायाधीश हैं, वे क्षण भर में हल कर देते हैं कि क्या सच, क्या झूठ? झूठ बोलने वालों को फांसी पर चढ़ा दिया जाएगा ताकि लोग झूठ बोलना बिल्कुल बंद कर दें। सारा देश धर्मात्माओं से भर जाए।

नसरुद्दीन ने बहुत समझाने की कोशिश की लेकिन सम्राट नहीं माना। अंततः नसरुद्दीन ने कहा कि ठीक, कल मैं किसी जीवंत उदाहरण से आपको समझाँऊगा। दूसरे दिन सुबह की बात थी, सम्राट अपने बगीचे में टहल रहा था, नसरुद्दीन उसके बगीचे के बाहर वाली सड़क से गुजरा। उसने सम्राट को नमस्कार की।

सम्राट ने पूछा– नसरुद्दीन, सुबह–सुबह कहाँ जा रहे हो?

नसरुद्दीन ने कहा– हुजूर फाँसी पर चढ़ने जा रहा हूँ।

सम्राट ने कहा– फाँसी! तुम तो सदा सच बोलने वाले आदमी रहे हो, तुमको क्यों फाँसी देंगे? तुम मेरे बचपन के घनिष्ट मित्र हो, तुम्हें कौन फांसी पर चढ़ाएगा?

नसरुद्दीन ने कहा– इसका मतलब हुआ कि मैं झूठ बोल रहा हूँ..... अभी जो मैंने स्टेटमैन्ट दिया कि 'मैं फाँसी चढ़ने जा रहा हूँ'..... क्या मैं झूठ बोला? आपने तो कानून बना दिया है कि झूठ बोलने वाले को फाँसी पर चढाएँगे, तो मुझे फाँसी पर चढ़ा दीजिए।

'मैं फाँसी चढ़ने जा रहा हूँ' अगर यह वक्तव्य झूठा है तो मुझे चढ़ाओ फाँसी पर, लेकिन याद रखना– अगर मुझे फाँसी पर चढ़ाया तो मेरा यह जो वचन था, यह सत्य सिद्ध हो जाएगा। मैंने यही कहा था कि मैं फाँसी पर चढ़ने जा रहा हूँ, और यदि तुमने मुझे चढ़ा दिया तो तुमने एक सत्यवादी को फाँसी पर चढ़ाया। और स्मरण रहे– यदि तुमने मुझे छोड़ दिया, फाँसी पर न चढ़ाया; तब तुमने एक झूठे आदमी को छोड़ दिया! क्योंकि मैं कह रहा था कि फाँसी चढ़ने जा रहा हूँ और तुमने मुझे छोड़ दिया; तो फाँसी न लगने की वजह से मेरा वचन झूठा निकला। अब बताओ, क्या करोगे?

वह बादशाह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। नसरुद्दीन ने कहा– मैं आपको यही बताना चाह रहा था कि सत्य और असत्य, नैतिकता और अनैतिकता, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, ये इतने आसान मामले नहीं हैं कि ऊपर–ऊपर से तय किये जा सकें। कभी–कभी बुरा काम अच्छा हो जाता है। कभी–कभी

अच्छा काम बुरा हो जाता है। जिंदगी बहुत जटिल है।

वही मैं आप से कहना चाहूँगा पाप कर्म और पुण्य कर्म की परिभाषा, ऊपर से तय नहीं होती, भीतर से तय होती है। यदि तुम कोई कर्म होशपूर्वक कर रहे हो, प्रेमपूर्वक, करुणा-भाव से कर रहे हो तो वह पुण्य है। अगर तुम किसी का नुकसान करने के इरादे से, किसी को हानि पहुँचाने के लिए, किसी को दुःख देने के लिए, मूर्च्छा में कुछ कर रहे हो तो वह पाप है।

एक उदाहरण से समझें। एक छोटा बच्चा है, वह एक दीपक की टिमटिमाती लौ देकर आकर्षित होता है। लौ की तरफ पकड़ने बढ़ता है। एक स्त्री वहाँ से गुजरती है, इस दृश्य को देखती है लेकिन चुपचाप वहाँ से निकल जाती है। फिर एक दूसरी महिला वहाँ से गुजरती है, जो इस बच्चे की माँ है। बच्चे से प्रेम करती है। वह बच्चे को मना करती है कि बेटा दीपक की लौ को मत पकड़ना, जल जाओगे।

बेटा नहीं मानता, फिर भी पकड़ने की कोशिश करता है, तब मां जोर से डांटकर चिल्लाती है। अगर वह तब भी न माने तो माँ उसको एक चाँटा मारती है किंतु उसे दीपक की लौ नहीं पकड़ने देती।

अब आप क्या कहोगे, यह डाँटना, डपटना, गुस्से में चिल्लाना, चाँटा मारना, यह हिंसा का कृत्य पाप है कि पुण्य है?

ऊपर कर्म से तय नहीं होगा। हमें देखना होगा उस महिला के भीतर इरादा क्या है? उसका इरादा है बच्चे को बचाना, वह जल न जाए, इसलिए उसको चाँटा मारा, इसलिए उस पर चिल्लाई, गुस्सा हुई। इसका क्रोध, इसकी हिंसा भी किसी करुणा से प्रेरित है और इसलिए वह पुण्य है। उसके हृदय में प्रेम छिपा है।

और पहली स्त्री, जो चुपचाप इस दृश्य को देखते हुए वहाँ से गुजर गई, बच्चे को रोकने की कोशिश में उसने कुछ भी न कहा, बचाने के लिए कुछ भी न किया; ऐसा लग सकता है कि बेचारी कितनी दयालु स्त्री है, इसने बच्चे को नहीं मारा। और इस दुष्ट मां को देखो, बच्चे को मार रही है, डांट रही है, लेकिन ऊपर से तय नहीं होता, भीतर से तय होगा। पहली स्त्री संवेदनहीन और कठोर है;

दूसरी स्त्री प्रेमपूर्ण और करूणावान है।

कृत्य के आंतरिक कारण, इरादा और प्रेरणा को देखना होगा, क्या पाप-पुण्य है, भीतर से जाँचना होगा। तुम बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय कुछ कर रहे हो कि दूसरों को दुःख और कष्ट पहुँचाने के इरादे से कुछ कर रहे हो, उससे तय होगा। तुम चेतना से भरे हुए, जागृत अवस्था में कुछ कर रहे हो कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष की मूर्च्छा में पड़कर कुछ कर रहे हो, उससे निर्णय होगा। बाहरी कर्म से अधिक महत्वपूर्ण आंतरिक भावदशा है। और इसीलिए दूसरे न जान सकेंगे, स्वयं ही पहचानना होगा। सजगता, प्रेम, करुणा, शुभाकांक्षा ये निर्णायक तत्व हैं।

क्या ओशोधारा एक नया सम्प्रदाय है?

चौथा प्रश्न है- हमारे देश भारतवर्ष में हिंदू, जैन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई इत्यादि धर्म पहले से ही हैं और फिलहाल इस राष्ट्र में कई नए सम्प्रदाय भी काम कर रहे हैं जैसे डिवाइन लाइट मिशन, राधा स्वामी, ब्रह्मकुमारी आदि। ओशोधारा का आना किस भाँति अन्य धर्मों या सम्प्रदाओं से भिन्न है? सद्गुरु देव, इसकी क्या उपयोगिता है कृपया समझांए?

धर्म का केन्द्रीय तत्व तो शाश्वत है। वह तो सनातन सत्य है लेकिन हर युग में, हर समय में धर्म के नए-नए आर्विभाव होते हैं, नई-नई कोपलें फूटती हैं। धर्म का शाश्वत रूप तो वही का वही है, उसमें तो कोई परिवर्तन नहीं होता लेकिन उसका जो ऊपरी ढाँचा है, ऊपरी वस्त्र है, ऊपरी सजावट है, वह बार-बार बदलती है। समय के अनुसार, युग की जरूरत के अनुसार, परिस्थितियों और समस्याओं के अनुसार उसका ऊपरी ढाँचा बदलता है। पुरानी बात पुरानी पड़ जाती है, नए समय में फिर नई चुनौतियाँ होती हैं उनके नए समाधान होते हैं। आज हमारे जीवन में कोई समस्या है, हम कृष्ण की गीता पढ़के उसे हल न कर सकेंगे।

आज तुम बीमार हो, समझो तुम्हें टी॰ बी॰ की बीमारी हो गई, पिछली सदी में जो डॉक्टर हुआ है एक बहुत प्रसिद्ध टी॰ बी॰ का इलाज करने वाला, वह तुम्हारे किसी काम आज न आ सकेगा, वह पिछली सदी में हुआ था। सौ साल बीत गए उसकी मृत्यु हुए। तुम्हें बीमारी आज है, तुम्हें आज ही कोई डॉक्टर चाहिए जो चिकित्सा कर सके। सौ साल पुराना डॉक्टर काम न आएगा। ठीक ऐसे ही धर्म भी एक चिकित्सा है, धर्म भी एक औषधि है। नित-नूतन उसमें बदलाहट होती है। हमेशा नई परिस्थितियाँ, नए लोग, उनके साथ नए ढंग से विधियाँ खोजनी होती हैं, नए ढंग के समाधान ढूँढने होते हैं, पुराने समाधान काम नहीं आते। किंतु फिर भी मैं कहूँगा कि धर्म का जो केन्द्रीय तत्व है, वह तो वही का वही होता है। परमात्मा वही है, सदा से एक ओंकार सतनाम, उसमें तो कोई भेद नहीं पड़ता। उसका प्रकाशमय रूप सदा वैसा ही रहता, सनातन रूप से वह वैसा ही है। समाधि में डूबने की कला सदा-सदा से वही की वही है, किंतु टैक्नीक्स बदल जाएंगी। ध्यान कि नई-नई विधियाँ आर्विभूत होंगी। समाधि की नई-नई विधियाँ खोजी जाएँगी और आगे भी खोजी जाती रहेंगी।

7

उदाहरणार्थ मनुष्य को पहले कैथारसिस की, रेचन की कोई जरूरत न थी। मनुष्य अशिक्षित थे, आदिवासी थे, जंगली थे, दिनभर कठोर परिश्रम करते थे और कैथारसिस की जरूरत ही न थी। एक आदमी, लक्कड़हारा दिनभर

जंगल में लकड़ियाँ काटता है, उसका सारा क्रोध और हिंसा उसी में निकल जाती हैं। अब अलग से उसे कोई क्रोध और हिंसा करने की जरूरत नहीं है। वह सरल व्यक्ति, हिंसा उसकी निष्कासित हो गई। वह सीधा शिथिल हो सकता है, किसी सामान्य सी विधि से, लेकिन आज हमारी स्थिति अलग है। न तो हम जंगल में रह रहे, न हम जंगली जानवरों से लड़ रहे हैं, न हम लकड़ियाँ काट रहे हैं, न हम पानी ढो रहे हैं, न हम कुदाली चला रहे हैं। हम दिनभर ऑफिस में बैठे हुए हैं और हमारा शरीर बना है जिन रसायनों से, जिन तत्वों से, उनमें उतनी क्रोध और हिंसा की क्षमता है और उसका कहीं भी निष्कासन नहीं। आज हमारे लिये जरूरी है, या तो हम कुछ खेलकूद में उस उर्जा को बहाएँ या रेचन की प्रक्रिया द्वारा उसका निष्कासन करें। तभी हम शांत और शिथिल हो पांएगे।

तो यह एक नई बात है, अब कोई कहने लगे कि कृष्ण ने तो यह नहीं सिखाई थी, बुद्ध ने नहीं सिखाई, महावीर ने नहीं सिखाई, रेचन करने की विधि। ओशो क्यों सिखा रहे हैं? ओशो के सामने जो लोग हैं, वे नए प्रकार के लोग हैं, यह सभ्य सुशिक्षित आधुनिक आदमी जो दिनभर ऑफिस में कुर्सी-टेबल पर बैठा रहता है। इसके लिए कोई नई विधि इजाद करनी होगी। इससे कोई शारीरिक श्रम करवाना ज्यादा अच्छा होगा। पुराने जमाने में कोई जरूरत न थी, वह आदमी थका मांदा दिनभर जंगल में लकड़ियाँ काटकर आया है, अगर उससे और शरीरिक श्रम करवाओंगे, बेचारे को हार्ट अटैक ही हो जाएगा। उसे तो सीधा ही विश्राम में ले जाया जा सकता है। तो समय बदलता है, ध्यान कि विधियाँ बदल जाती हैं। ध्यान तो वही का वही रहता है, वही निर्विचार चैतन्य ही ध्यान है लेकिन उस तक पहुँचने की तरकीब बदल जाएँगी। स्वयं ओशो ने अपने जीवनकाल में कितनी नई विधियाँ गढ़ी और उसका कहीं कोई अंत थोड़ी होगा। आगे और नए बुद्ध पुरूष होंगे, वह अपनी परिस्थिति के मुताबिक, नए ढंग से नई विधियाँ खोजेंगे।

तो संक्षिप्त में कहना चाहूँगा कि धर्म के नए-नए रूप हमेशा प्रगट होते

रहे हैं, और आगे भी होते रहेंगे। आप पूछते हैं कि ओशोधारा किस प्रकार अन्य सम्प्रदायों से भिन्न है? एक मुख्य बिंदु मैं कहना चाँहूगा और वह यह है कि यहाँ पर समाधि की कला सिखाई जा रही है, अन्य सम्प्रदायों में समाधि की कला नहीं सिखाई जाती, ज्यादा से ज्यादा ध्यान तक व्यक्ति को ले जाया जाता है। पूजा, प्रार्थना, शास्त्र, साधु-संगत, गुरु की दीक्षा, ध्यान की विधियाँ, यहाँ तक तो कई सम्प्रदायों में बताई जाती हैं, लेकिन समाधि में डूबने की कला कहीं भी, कोई नहीं सिखा रहा। यह एक नई चीज शुरू हुई है और यह केवल ओशोधारा में ही शुरू हो सकती थी क्योंकि ओशो इसकी भूमिका बना गए। ओशो इसका पूरा विज्ञान समझा गए, अब सिर्फ टैकनीकली उसको व्यवहारिक रूप से करवाने का सवाल था। ओशो एक महान वैज्ञानिक हुए धर्म के। ओशोधारा में हम आचार्यगण जो काम कर रहे हैं, वह साइंटिस्ट का काम नहीं है, वह एक टैकनीसियन का काम है, ओशो पूरा विज्ञान खोल के हमारे सामने रख गए, अब हम उसका कैसे उपयोग करें? मामला बड़ा सरल है।

जैसे कि ऐडीसन और फ्रायड ने विद्युत की खोज की, अब तुम्हारे घर का बल्ब फ्यूज हो गया है कि स्विच खराब हो गया तो छोटा-मोटा मैकेनिक ही सुधार देगा। फ्रायड को बुलाने की जरूरत नहीं है। मोहल्ले में जो मैकेनिक रहता है, वही सुधार देगा। फ्रायड ने महान् योगदान दिया, उसने विद्युत की खोज की। ऐडीसन ने विद्युत को सारी दुनिया में कैसे फैल सके उसकी व्यवस्था कर दी। विद्युत के हजारों उपकरण बना दिए, अब बाकी का काम तो तकनीकी है।

इस भाँति से देखना ओशो एक नई शुरूआत कर गए। धर्म के अत्यंत गुप्त रहस्यों को उन्होंने पहली बार खोला, सामूहिक रूप से उन्होंने प्रवचन दिए, उन विधियों पर जिनकी कभी किसी ने चर्चा नहीं की थी। पुराने आश्रमों में, गुरु अपने किसी एकाध चुनिंदा शिष्य को मृत्यु के पूर्व, उत्तराधिकारी चुनके जाता था और उसको वह ध्यान कि विधि बता जाता था। बीस-पच्चीस साल तक लोग आश्रम में काम करते थे, झाड़ू-बुहारी लगाते थे, गुरु के पैर दबाते थे। मरने के थोड़े दिन पहले गुरु एकाध चुनिंदा शिष्य को बुला के कान में कहता था कि अपनी

आती–जाती श्वास को देखना। इतनी छुपी हुई वह चीज थी।

ओशो ने पहली बार धर्म के पूरे विज्ञान को सरल भाषा में खोल के रखा। जिसे हम सब समझ सकते है, ऐसी भाषा में उन्होंने कहा। पुराना जो ज्ञान था वह इतना कठिन और क्लिष्ट भाषा में था, ऐसी–ऐसी उपमाओं में था, काव्यात्मक प्रतीकों में था, कि हम पढ़के भी उसको नहीं समझ सकते थे। हमारे किसी काम का न था। तो ओशो ने नया द्वार खोला, इसलिए ओशोधारा में आज समाधि के कार्यक्रम हो पा रहे हैं। तो मैं कहना चाहूँगा कि नई घटना जो घट रही है ओशोधारा में अन्य सम्प्रदायों कि तुलना में, वह है समाधि की शिक्षा।

आज इतना ही।

क्या सत्य, क्या असत्य ?

8

प्रश्नसार–

'असतो मा सदगमय' का अर्थ?

आज एक ही प्रश्न पूछा गया है– उपनिषद के ऋषि प्रार्थना करते हैं, 'असतो मा सदगमय'। सद्गुरु देव, इसका अभिप्राय समझाने की अनुकंपा करें।

सबसे पहले तो हम यह समझें कि सामान्य भाषा में हम किसे सत्य कहते हैं? फिर समझना आसान होगा कि ऋषि किस सत्य की बात कर रहे हैं। सामान्य भाषा में हम जिन चीजों को सत्य कहते हैं वह केवल सापेक्षिक सत्य है। महावीर ने आज से 2500 वर्ष पूर्व स्यातवाद एवं अनेकांतवाद के रूप में सापेक्षिकता को उद्घाटित किया था। आईंस्टीन ने 20वीं सदी की शुरुआत में वैज्ञानिक रूप से इस बात को खोजा और सापेक्षिक सत्य की धारणा दी। कोई बात यदि आंशिक रूप से सत्य है

इसका मतलब हुआ वह आंशिक रूप से असत्य भी है। तो जिसे हम सत्य कहते हैं वह असत्य का ही एक दूसरा रूप है। अत: ऋषि जब कहते हैं असत्य तो उसमें दोनों बातें हैं। इसको जरा विस्तार से समझो।

मुल्ला की रिलेटिविटी

नसरुद्दीन के एक मित्र मिले और उन्होंने पूछा नसरुद्दीन क्या हाल-चाल हैं? नसरुद्दीन ने कहा मैं कैसे बता सकता हूं कैसे हाल-चाल हैं! किसी का नाम लो, किसी की तुलना में ही कुछ कहा जा सकता है। शहर में कई लोग हैं जिनकी तुलना में मेरी हालत खराब है। किन्हीं अन्य की तुलना में बहुत अच्छी स्थिति है। कुछ लोगों की तुलना में मैं स्वस्थ हूं, कुछ लोगों की तुलना में मैं बीमार हूं। अनेक लोगों की तुलना में मैं धनी हूं, किंतु कई लोगों की तुलना में मैं बहुत गरीब हूं। कई लोगों की तुलना में मैं अत्यंत बुद्धिमान हूं, कई लोगों के सामने मैं बिलकुल महामूढ़ हूं। मैं कैसे बताऊं कि मेरा हाल-चाल क्या है? किसी का नाम लो उसकी तुलना में ही मैं कुछ बता सकता हूं। जगत में हम जिन चीजों को जानते हैं उनका अपना कोई परम-मूल्य नहीं है, कोई एब्सोल्यूट वेल्यू नहीं है; सब सापेक्ष है।

प्रार्थना नहीं, अपने प्राणों को पुकारो

ऋषि जब कहते हैं 'असतो मा सदगमय', असत्य से सत्य की ओर चलो। तो पहली बात यह समझना अनिवार्य है कि यह किसी ईश्वर के नाम की गई प्रार्थना नहीं है। सामान्यत: लोग समझते हैं किसी परमात्मा से प्रार्थना की जा रही है कि मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। नहीं, यह स्वयं के लिए चुनौती और पुकार है कि असत्य से सत्य की ओर चलो।

...'ले चलो' का क्या मतलब, कौन ले जाएगा? असत्य से सत्य की ओर। चलो- स्वयं के प्राणों को एक चुनौती दो, एक आमंत्रण, एक पुकार दो कि उठो सत्य की तरफ। सामान्य भाषा में जिसे हम सत्य कहते हैं.... उसे ऐसा समझें कि सदा हम सत्य का एक बहुत छोटा-सा अंश ही जान पाते हैं।

जरूरत के मुताबिक बदलते सत्य

आप एक सड़क से गुजरते हैं। रास्ते में बहुत-सी दुकानें हैं, बहुत से साइन बोर्ड लगे हुए हैं लेकिन आपको वही दिखाई पड़ता है जो आप देख सकते हैं। सड़क से एक डायबटीज का मरीज गुजरता है, उसे मिठाई की दुकानें ही दिखाई पड़ती हैं। उसके लिए वर्जित मिठाई की दुकान सबसे ज्यादा आकर्षक है। हो सकता है आप भी उसी सड़क से गुजरें आपको मिठाई की दुकान बिलकुल भी न दिखाई पड़े। एक स्त्री गुजर रही है, कपड़ों की दुकान पर उसकी नजर पड़ेगी। उसके लिए कपड़े की दुकान सत्य है। बाकी दुकानों पर उसकी नजर नहीं पड़ेगी। एक छोटा बच्चा वहाँ से निकले, उसके लिए खिलौनों की दुकान सत्य है, उसके लिए बाकी चीजों का होना-न-होना बराबर है। हमारी इंद्रियां जिस तरफ लगी होती हैं हमें केवल उसी का पता चलता है और शेष जगत के प्रति हम अनभिज्ञ रह जाते हैं। उसका हमें पता ही नहीं चलता। तो सत्य का एक बहुत छोटा अंश ही हम जान पाते हैं। ऋषि उसी को असत्य कह रहे हैं।

आयु के अनुसार बदलते सत्य

अलग-अलग उम्र के अलग-अलग सत्य होते हैं। एक छोटे बच्चे के लिए खिलौना सत्य है। खिलौने की टांग टूट जाए तो वह रात भर चैन से सो नहीं पाता। बड़े-बूढ़ों को देखकर हंसी आती है कि इसमें रोने की क्या जरूरत? यह बालक चैन से सो क्यों नहीं पा रहा, व्यर्थ ही परेशान हो रहा है! किसी युवक-युवती के लिए प्रेम सत्य है। इश्क सत्य है। बुजुर्गों को उनका पागलपन देखकर हंसी आती... यह पागलपन ठीक वैसा ही लगता है जैसे छोटा बच्चा खिलौने के लिए रो रहा था। वैसे ही कोई अपने प्रेमिका या प्रेमी के विरह में रो रहे हैं, तड़फ रहे हैं। प्रौढ़ व्यक्ति को इन जवानों का रोना देखकर हंसी आती है। लेकिन उसके अपने सत्य हैं। इसको असत्य तो नहीं कह सकते यह सत्य का एक अंश है लेकिन इसके और विकास की संभावना है। इससे और आगे बढ़ सकते हैं।

मैंने सुना है- एक प्रोफेसर ने मजाक में पूछा- मेरे टीचर ने एक सवाल मुझसे पूछा था, और आज मैं वही सवाल मैं भी वही प्रश्न तुमसे पूछना चाहता हूं। बताओ,

इश्क और प्यार में क्या फर्क है?

एक लड़के ने कहा- सर, आप अपनी बेटी के साथ जो करते हैं वह प्यार है; किंतु इश्क वह है जो हम आपकी बेटी के संग करते हैं।

प्रोफेसर हंसकर बोला- कमाल है... पच्चीस साल पहले यही महान् कार्य मैं तुम्हारे दादाजी की बेटी अर्थात तुम्हारी बुआजी के साथ किया करता था। तुम्हारे दादाजी मेरे टीचर थे, और मैंने भी उन्हें तुम्हारी ही तरह उत्तर दिया था।

अलग-अलग उम्र के अलग-अलग सत्य होते हैं। आज जो समझदार हो गए हैं, कभी वे भी नासमझ थे। आज जो जाग गए हैं, कभी वे भी सपनों में दबे थे। सपने का अपना सत्य होता है।

राजनीति के अनुसार बदलते सत्य

राजनीति बदल जाती है, राजनीतिक सत्य बदल जाते हैं। ऐसा समझें कि देश की मान्यता कि यह भारत देश है, यह नेपाल है, यह चीन है- हम कहेंगे यह सत्य है। ऋषि नहीं कहेंगे यह सत्य है; यह तो राजनीति की बात है। आज से 60 साल पहले करांची भारत का हिस्सा था अब करांची पाकिस्तान का हिस्सा हो गया है। राजनीतिक सत्य बदल गया। नक्शे में लाइनें बदल गईं, रंग बदल गये। हम सामान्यत: जिन्हें सत्य कहते हैं वे सब परिवर्तनशील हैं। रोज-रोज बदल जाते हैं। फैशन की तरह कभी कुछ सत्य हो जाता है, कभी कुछ और सत्य हो जाता है। हर देश-काल के, अलग-अलग सभ्यताओं के, अलग-अलग परिस्थितियों के अलग-अलग सत्य होते हैं। इन्हें सत्य कहा जाए या न कहा जाए? करांची भारत का हिस्सा है कि नहीं है? करांची, करांची है। भारत एक राजनीतिक नक्शा है। पाकिस्तान एक राजनीतिक नक्शा है, यह कल को फिर बदल सकता है। अभी भारत में भारत का जो नक्शा हम देते हैं उसमें काश्मीर भारत में दिया जाता है, पाकिस्तान के बच्चे स्कूल में जो भूगोल पढ़ते हैं उसमें पाकिस्तान के नक्शे में काश्मीर दिखाया जाता है। उनके लिए सत्य अलग हो गया, हमारे लिए सत्य अलग हो गया। इसको कैसे सत्य कहेंगे? पहले ढाका के मलमल की प्रशंसा

करना एक भारतीय के लिए देशप्रेम की बात थी, अब संभवत: गद्दारी कहलाएगी! अगर इस्लामाबादवासी 1947 के पहले किसी दिल्लीवासी की मदद करता तो राष्ट्रभक्ति होती, अब राष्ट्रद्रोह होगा।

एल्युमिनियम श्रेष्ठ या स्वर्ण ?

ऐसे ही आर्थिक सत्य होते हैं, जरा-जरा में उनकी वैल्यू बदल जाती है। हम सोचते हैं कि सोना महंगी धातु है, हम सोने का मूल्य मानते हैं। वह हमारी आपसी सामूहिक मान्यता पर निर्भर है। पूरी दुनिया मान रही है कि सोना मूल्यवान है। उसका मूल्य हो गया। यह कोई परम सत्य नहीं है; कल को बात बदल सकती है। अचानक सोने की बहुत बड़ी-बड़ी खदानें मिल जाएं और सोना बहुत मात्रा में निकलने लगे, लोहे से भी ज्यादा मात्रा में... तो सोने की सारी कीमत गिर जाएगी। महिलाएं सोने के आभूषण पहनना बंद कर देंगी। फिर सोने का फर्नीचर इत्यादि बनने लगेगा। वह तो रेयर, दुर्लभ और कम मात्रा में होने की वजह से उसकी वैल्यू है। कौन उसको गले में माला बनाकर पहनेगा? लोग हंसेंगे। लेकिन आज सोने में जो सौंदर्य दिखाई पड़ रहा है वह एक आर्थिक सत्य है। वह बदल सकता है।

शायद आपको पता हो जब एल्युमिनियम की खोज हुई थी- पहली बार सफेद रंग की धातु निकली तो सम्राट ने घोषणा कर दी थी कि केवल सम्राट परिवार के लोग ही एल्युमिनियम के बरतनों में खाना खाएंगे और कोई नहीं खा सकता। 'बैन' कर दिया था कि कोई साधारण-जन इसका उपयोग न करें। यह केवल राज परिवार के लिए है। बस शाही शानो-शौकत के लिए ही सफेद धातु के बरतन! फिर तो एल्युमिनियम बहुत मात्रा में निकल आया। आज भिखारियों के पास एल्युमिनियम के बरतन हैं। जब पहली बार सफेद रंग की धातु मिली तो पता नहीं था कि इतनी अधिक मात्रा में निकलेगी!

आर्थिक तथा सामाजिक सत्य

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने हजार रुपये का नोट बंद करवा दिया था। अचानक कालेधन की कमाई वाले अमीरों के घर में रखी हजार रुपये की गड्डियां सब बेकार हो गईं। कई लोगों ने नोटों में तम्बाकू भरकर सिगरेट बना कर पी लीं। किसी ने टायलट पेपर की तरह उपयोग कर लिये। क्योंकि हजार रुपये के नोट की कोई कीमत नहीं बची। तो मान्यता की बात है रुपये का सत्य, या सोने का सत्य, या हीरे-मोती का सत्य...ये कोई सत्य नहीं हैं। हम सब मान रहे हैं, तो ठीक... हम सब हिप्नोटाइज्ड हैं।

सामाजिक सत्य भी फैशन की तरह बदलते हैं। कभी भारत में सती प्रथा प्रचलित थी। खूब सम्मान की बात थी। पूजा होती थी सती के चौबारे की। आज हमारी मानसिकता बदल गई। सामाजिक परिवेश बदल गया। अब कहीं कोई किसी को सती करेगा तो कानूनी रूप से उसे हम अपराधी ठहराएंगे। यह तो सरासर हत्या हो रही है। वह सदा से हो रही थी, किंतु काफी सम्मानित व पूज्यनीय बात थी; अर्चना के योग्य थी। अभी तक राजस्थान में चल रही है सती-पूजा।

ठीक इसी प्रकार एक सामाजिक सत्य है पति-पत्नी का संबंध। हम कितना मान कर चलते हैं कि कोई पति-पत्नी है! ठोस सत्य कुछ भी नहीं है, हवाई बात है। एब्सोल्यूट वैल्यू जरा भी नहीं है उसकी। अभी स्वीडन की सरकार ने फैसला कर लिया है कि शादी जैसी कोई चीज नहीं होगी। अब वहाँ न कोई शादी होगी, न तलाक होगा। पति-पत्नी का सत्य समाप्त हो गया। जल्दी ही पूरे यूरोप में फैल जाएगी यह बात। और शायद आने वाले भविष्य में सारी दुनिया में यह फैल जाएगी। अभी स्वीडन में लोगों की मान्यता खत्म हो गई विवाह में; कोई किसी का पति-पत्नी नहीं रह गया। लेकिन हमारे मुल्क में बड़ी गंभीरता से माना जा रहा है कि यह पति है, यह पत्नी है। कितनी प्रगाढ़ मान्यता...सात जन्मों का साथ!...जीवन का एक महान् सत्य सा प्रतीत होता है। लेकिन यह भी माना हुआ है; बस, सत्य सा प्रतीत ही होता है।

स्वामित्व का सत्य

समाजवाद आने के पहले पर्सनल प्रोपर्टी की बात थी। फिर रूस में, चीन में साम्यवाद आ गया। सारी संपत्ति सरकार की हो गई। जो लोग मान रहे थे मेरा घर, मेरी कार, मेरा सामान... अचानक पता चला किसी का कुछ नहीं, सब सरकार का है। स्वामित्व अचानक समाप्त हो गया। जो शासक रूस के सिंहासन पर बैठा था, वह जार पकड़ा गया, उसकी हत्या कर दी गई। सैकड़ों वर्षों से जो राज सिंहासन पूजे जा रहे थे, सम्राट ईश्वर के प्रतिनिधि माने जा रहे थे, अचानक वे अपराधी घोषित कर दिये गये। सचमुच में कोई राजा होता नहीं है, यह तो सामाजिक मान्यता की बात थी। समाज ने अपना नियम बदल दिया। जो शासक थे वह शोषक अपराधी कहलाने लगे।

व्याभिचार की धारणा का सत्य

पश्चिम में आजकल वे कह रहे हैं बिना प्रेम के किसी स्त्री के साथ सोना व्यभिचार है। व्यभिचार की धारणा भी बदल सकती है, ऐसा किसी ने नहीं सोचा था। आज के आधुनिक मन के हिसाब से अपनी पत्नी के साथ सोना, यदि उससे प्रेम नहीं है तो अपनी पत्नी के साथ सोना भी व्यभिचार है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इसमें कौन-सा सत्य है- पुरानी बात में सत्य था कि इसमें सत्य है? युग-युग के अपने सत्य होते हैं।

सौंदर्य : सिर्फ मान्यता में ?

इसमें अपने आप में कोई परम सत्य नहीं है। भारत में हम जिस स्त्री को सोचते हैं कि सुन्दर स्त्री है, अफ्रीका के लोगों से पूछें वे बिलकुल भी न मानेंगे कि सुन्दर है। अफ्रीका की फिल्मों में जो हीरोइनें हैं भारत में कोई मानने को तैयार नहीं होगा कि वे सुन्दर हैं। सौंदर्य कोई सत्य है या सिर्फ मान्यता की बात है, प्रचलन की बात है? अभी यहाँ इतनी सारी स्त्रियां बैठी हुई हैं, अधिकांश के सिर पर छोटे-छोटे बाल दिख रहे हैं। आज से पचास साल पहले लम्बे बाल सुन्दर थे... लम्बे घुंघराले नागिन जैसे बाल। नागिन जैसी लट की चर्चा कविताओं में हुआ करती थी। अब लट चली गई सिर्फ नागिन रह गई! सारी स्थिति बदल गई।

समय के अनुसार बदलते सत्य

समय के अनुसार सत्य बदल जाते हैं। आज से चालीस साल पहले गर्भपात कराना अपराध था। जिसने गर्भपात कराया उसको भी सजा मिलती थी और डाक्टर को भी सजा मिलती थी। जब जनसंख्या ज्यादा बढ़ गई तो गर्भपात सरकार ने कानूनी घोषित कर दिया। अब जो जितने ज्यादा गर्भपात कराएगा वह डाक्टर उतना ही ज्यादा सम्मानित होगा। संभवत: उसे भारत रत्न की उपाधि मिलेगी। चालीस साल पहले उसको फांसी की सजा मिलती थी। चोरी-छुपे उसे गर्भपात कराना होता था। लेकिन अब विधान बदल गया, नियम बदल गया।

दस साल पहले ही भारत में आत्महत्या करना अपराध था। अगर कोई आत्महत्या करते पकड़ा जाता तो उसे सजा दी जाती थी। सरकार ने फैसला बदल दिया। सरकार कहती है अब आत्महत्या करना कानूनी है। अब आप आत्महत्या कर सकते हैं। सरकार को कोई लेना-देना नहीं, आपकी मौज! और अगर जनसंख्या बढ़ती चली गई आज से तीस साल बाद वृद्धों की हत्या करना शायद पुण्य का कार्य हो जाएगा।

हत्या : पाप या पुण्य?

बहुत से उन्नत देशों में वृद्धों की जनसंख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। युवा वर्ग और वृद्धों की जनसंख्या का अनुपात डगमगा गया है। अतीत में हमेशा काम करने में सक्षम लोग, युवा वर्ग ज्यादा हुआ करते थे। वृद्धों की संख्या छोटी-सी होती थी। 60-65 साल की उम्र तक लोग मर जाते थे। यदा-कदा मोरारजी देसाई जैसा कोई जिद्दी आदमी उस सीमा से आगे बढ़ता था। आज स्थिति पलट गई है। जापान में छोटे बच्चों की संख्या कम होती जा रही है। बच्चों की जन्मदर 1.7 प्रति जोड़ा है, अर्थात बीस पति-पत्नी मिलकर अगली पीढ़ी के कुल सत्तहर बच्चों को पैदा करते हैं। हर साल जापान की संख्या कम होती जा रही है। अधिकांश युवा शादी नहीं कर रहे, बच्चे पैदा नहीं कर रहे। वृद्धों की संख्या बढ़ती चली जा रही है। मेडिकल साइंस की उन्नति से लोग 100 साल, 105 साल, 110 साल तक जीने लगे हैं। कोई 10 साल से अस्पताल में भर्ती है, तो कोई 20 साल से... और पता

नहीं कितने साल तक रहेंगे ये लोग?

पश्चिम के कुछ देशों में तो स्वेच्छा-मृत्यु की इजाजत देनी पड़ी। अगर लोग नहीं मरेंगे तो क्या करोगे? जो लोग काम कर रहे हैं, धन कमा रहे हैं, उनकी संख्या घटती जा रही है, और जो लोग काम नहीं कर रहे, समाज पर बोझरूप हैं, उनकी गिनती बढ़ती जा रही है। उन्हें कितने दिनों तक पेंशन और सोशल सिक्योरिटी देते हुए झेला जा सकेगा? आज जापान में युवकों की बजाय वृद्धों की संख्या ज्यादा है। शायद दस-बीस साल में सरकार को सोचना पड़ेगा जो लोग स्वेच्छा से नहीं मर रहे हैं उनको जबरदस्ती मारना पड़ेगा। क्या करेंगे? जैसे एक दिन हमने स्वीकार कर लिया गर्भपात को कि यह हत्या नहीं, पुण्य का कार्य है और पुरस्कार देने लगे उन लोगों को जो गर्भपात करा रहे हैं। शायद आने वाले दिनों में वृद्धों की हत्या करना भी संवैधानिक हो जाएगा! समाज-सेवक यह काम करेंगे, देश की सेवा करेंगे। जैसे नौकरी से रिटायरमेंट की उम्र तय है, ठीक वैसे ही जिंदगी से रिटायर करने की उम्र भी तय करनी होगी। समय बदलता है, परिस्थितियां बदल जाती हैं। हम जिन्हें ठोस सत्य मानते थे अचानक पता चलता था उनमें कोई भी ठोस सत्य नहीं है। सिर्फ मान्यता की बात थी।

भाषा के साथ सम्मोहन

कुछ भाषागत सत्य होते हैं। शब्दों के साथ हमारा गहरा सम्मोहन है। लेकिन शब्द का अपने आप में कोई अर्थ नहीं होता। कोई व्यक्ति आपको गाली दे देता है, आप नाराज हो जाते हैं। यद्यपि शब्द का अपने आप में कोई अर्थ नहीं है। हो सकता है कि किसी अन्य भाषा में उसका अर्थ कुछ और होता हो। अब उदाहरण के लिए हिन्दी में हम जिसे फूल कहते हैं, अंग्रेजी में उसका अर्थ होता है मूर्ख, हिन्दी में उसका अर्थ होता है: पुष्प, सुमन। एक ही शब्द है और उसके दो अर्थ हो गये।

उर्दू में खुदा यानी परमात्मा होता है। मैं एक दिन व्यंग्य चित्र देख रहा था, दिल्ली में एक व्यक्ति खड़ा है गड्ढ़ों वाली सड़क के किनारे और गा रहा है-

इधर भी खुदा है, उधर भी खुदा है।
जहाँ देखता हूं, खुदा ही खुदा है॥
कल नहीं खुदा था जहां, आज खुदा है वहाँ भी।
आज बच गया है जहां, कल खुदा होगा वहाँ भी॥

अब खुदा का इसमें क्या अर्थ है? शब्दों का अपने आप में कोई अर्थ नहीं है। सारे अर्थ हमारे दिए हुए हैं। लेकिन हम शब्दों को सत्य मानकर जीते हैं। मुझे स्मरण आता है कि 'मा प्रेम काव्या' नामक एक पाश्चात्य महिला ने ओशो से निवेदन किया कि मेरा संन्यास-नाम परिवर्तित करने की कृपा करें। मेरे देश में जाकर मैं यह नाम किसी को न बता पाऊंगी क्योंकि वहाँ की भाषा में काव्या शब्द का अर्थ है- 'सुअर की औलाद'। हिन्दी में जो इतना सुंदर काव्यात्मक लग रहा है, वह किसी अन्य भाषा में अपशब्द हो सकता है; हमें ख्याल भी नहीं आ सकता!

धार्मिक सत्य कितने सत्य?

अलग-अलग धर्मों के अलग-अलग क्रिया-कांड, पूजा-प्रार्थनाएं, अंधविश्वास, शास्त्र तथा रूढ़िगत धारणाएं हैं। वे भी हमारे संस्कारों के हिस्से हैं। उनका भी अपना कोई सत्य नहीं है। समय बदल जाता है, सत्य बदल जाते हैं। पहले नरबलि चढ़ाना एक धार्मिक कृत्य था। फिर नरबलि के प्रति लोगों के मन में घृणा पैदा हो गई, अब पशुओं की बलि चढ़ती है। जब धीरे-धीरे मनुष्य और ज्यादा चैतन्य होगा तो शायद पशुओं की बलि भी बंद हो जाएगी। जैसे-जैसे मनुष्य जाति का विकास होगा, सत्य बदलते चले जाएंगे... धार्मिक सत्य भी! लेकिन आज से दो हजार साल पहले नरबलि करना एक आध्यात्मिक, धार्मिक कृत्य था। अब उसके प्रतीक मात्र रह गये हैं। आप मंदिरों में नारियल फोड़ते हैं वे आदमी की तरह हैं... दाढ़ी-मूंछ उनमें रहती हैं, आखें बनी हुई हैं नारियल में। वह प्रतीक है पुराना कि अब आदमी की खोपड़ी तो नहीं काट रहे हैं, नारियल फोड़ रहे हैं। इसीलिए नारियल को 'खोपड़ा' भी कहा जाता है। वह लगता है आदमी की खोपड़ी जैसा ही। किसी जमाने में नरबलि होती थी। अश्वमेघ यज्ञ होते थे। नरमेघ

यज्ञ होते थे- बहुत धार्मिक लोग किया करते थे! आज शायद हम उन लोगों को धार्मिक नहीं कह सकेंगे।

युधिष्ठिर : धर्मराज या अधर्मराज?

युधिष्ठिर अपने जमाने के धर्मराज कहलाते थे। वह उस समय के सर्वश्रेष्ट धार्मिक पुरुष थे। एक जुआरी आदमी जो अपनी पत्नी को जुएं में दांव पर लगा देता है वह आदमी धर्मराज था। पांच भाइयों ने एक अबला को सामूहिक पत्नी बनाकर रखा था, और यह समाज स्वीकृत था। आज शायद हम स्वीकार नहीं कर पाएंगे। हमारी धार्मिक मान्यता बदल गई। धर्म भी बदलते रहते हैं। उनकी भी फैशन बदलती रहती है। इन धारणाओं को 'सनातन धर्म' कहना ठीक नहीं। यह 'सनातन' शब्द के साथ अन्याय है।

सिद्धांत और दर्शन शास्त्र की सचाई

दार्शनिक-सैद्धांतिक सत्य तो बिलकुल ही काल्पनिक एवं हास्यास्पद होते हैं। यूरोप में मध्ययुग में हजारों-हजारों दार्शनिक सैकड़ों वर्षों तक एक विषय पर चिंतन करते रहे कि एक सुई की नोक पर कितने देवता खड़े हो सकते हैं? हमें इस बात पर बहुत हंसी आती है- एक सुई की नोक पर कितने देवता खड़े हो सकते हैं! इस पर हजारों लोगों ने अपना जीवन कुर्बान कर दिया- सिर्फ इसी का चिंतन-मनन करते हुए। खूब वाद-विवाद चला, बहुत बहसें हुईं, जमकर तर्क-वितर्क हुए। कोई छोटा-मोटा समय नहीं, करीब-करीब पांच सौ साल इस पर वाद-विवाद चलता रहा। आज हम इस बात पर हंसेंगे कि जरूरत क्या थी? क्या मूढ़ता भरी बचकानी बात थी! लेकिन अभी जो दर्शन शास्त्र चल रहा है, दुनिया में जो फिलॉसफी चल रही है, मनोविज्ञान की मान्यताएं प्रचलित हैं; उसके बारे में आप कहेंगे कि ये बिलकुल ठीक हैं। कितने सारगर्भित प्रश्न हैं, अहा! लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि न प्रश्न महत्वपूर्ण है, न उसका उत्तर; सब कोरी बकवास है। लेकिन जब तक वह चल रहा है तब तक समझ में नहीं आता। लेकिन जब समय बीत जाता है तब हमें बहुत हंसी आती है कि कैसी मूढ़तापूर्ण बात है जो इतना समय हमने खर्च किया

इसकी जरूरत ही क्या थी? दार्शनिक शास्त्रों के जो वैचारिक सत्य हैं, वे बिलकुल ही काल्पनिक, धारणाओं से बंधे हुए, मनगढ़ंत सिद्धांतों पर आधारित हैं।

आइंस्टीन सत्य या न्यूटन?

वैज्ञानिक जिन्हें सत्य कहते हैं उन्हें भी सत्य कहना मुश्किल है। न्यूटन ने जो सत्य खोजा था, आइंस्टीन का समय आते-आते वह अवैज्ञानिक सिद्ध हो जाता है। और आइंस्टीन ने जो खोजा अगले पचास साल में वह अवैज्ञानिक सिद्ध हो जाएगा। लेकिन जब तक नई बात न खोज ली जाए तब तक ज्ञात तथ्यों के आधार पर जो सिद्धांत हमने बनाया है वह सत्य जैसा आभासित होता है। लेकिन सत्य उसमें जरा भी नहीं। विज्ञान सिर्फ इतना ही कह सकता है कि आज तक जो पता चला है उसके आधार पर ऐसा सिद्धांत है। कल नए तथ्य उजागर होंगे उनका क्या करोगे? फिर सिद्धांत को बदलना पड़ेगा। पिछले तीन सौ साल का विज्ञान का इतिहास बताता है कि हर दस-पांच साल में उलट-फेर हो जाती है। वह सिद्धांत जिसको बिलकुल ही प्रामाणिक माना गया था, पता चलता है दस-बीस साल बाद कि उसमें बिलकुल ही सच्चाई नहीं है... तो कैसे कह सकते हो कि विज्ञान जो आज कह रहा है वह सत्य है। अगले दस-पांच साल में यह भी बदल जाएगा। क्या यह वाकई सत्य है? इसलिए ऋषि कहता है असतो मा सद्गमय। असत्य से सत्य की ओर चलो।

गणितीय सत्य या असत्य?

मैथेमैटिक्स के अपने सत्य हैं। गणित के सत्य भी मान्यता के सत्य हैं। हम मान रहे हैं शून्य से लेकर नौ तक की गिनती। इसको हम सत्य मान लेते हैं। एक धारणा हमने बना ली फिर गणित का पूरा महल खड़ा होता है। लेकिन ध्यान रखना, उसकी बुनियाद ही मान्यता पर है। आइंस्टीन ने कहा- दस तक की गिनती की कोई जरूरत नही है, तीन तक की गिनती से काम चल जाएगा और उसने पूरे गणित के भवन को उस आधार पर खड़ा करके दिखा दिया। उसने कहाः एक, दो, तीन, उसके बाद सीधा दस आ जाता है। फिर ग्यारह, बारह,

तेरह, और फिर बीस। बीच के अंकों की कोई जरूरत नहीं है। उसमें दो और दो जोड़ोगे तो ग्यारह हो जाएंगे। हमारे गणित में दो और दो चार होते हैं। आइंस्टीन के गणित में दो और दो ग्यारह होते हैं। चार जैसी कोई चीज है ही नहीं... एक, दो, तीन, दस और ग्यारह। हमारे माने हुए गणित के सत्य हैं। काम चलाऊ हैं। उपयोगी हैं, व्यवहारिक हैं। लेकिन उनकी अपने आप में कोई सच्चाई नहीं है। इनकी कोई सत्ता नहीं है। और सत्य का मतलब है जिसकी कोई सत्ता हो, जिसका एग्जिस्टेंस हो।

बौद्धिक सत्य की सत्ता- संदेहास्पद

मैंने जितनी बातें आपको कहीं इनकी कोई भी सच्चाई नहीं है। फिर जिन्हें हम बौद्धिक सत्य कहते हैं- शुभ और अशुभ की धारणा, नैतिक और अनैतिक की धारणा, अच्छे और बुरे की धारणा...ये मनोवैज्ञानिक सत्य हैं जो रोज बदल रहे हैं। आजकल पागलखानों में जितने पागल भर्ती हैं जरूरी नहीं कि वे सब पागल ही हों। एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक का कहना है कि कम से कम दस प्रतिशत लोग पश्चिम के पागलखानों में ऐसे हैं जो अगर भारत में पैदा होते तो उन्हें संत और परमहंस कहा जाता। मनोवैज्ञानिक के पास अभी परमहंस की कोई पहचान नहीं है। उनको पागल कहा जा रहा है। और मनोवैज्ञानिक, जिसने उनको पागल करार करके पागलखाने में बंद करा दिया है, वह उसे पूर्ण रूप से सच मान रहा है कि यह आदमी पागल है। कतई जरूरी नहीं कि यह बात सच हो! हो सकता है वह व्यक्ति परमहंस हो जिसको पागल कहा जा रहा है। इसके ठीक विपरीत भारत में बहुत पागलों को परमहंस समझा गया है। जरूरी नहीं कि वे परमहंस ही रहे हों। लेकिन लक्षण मिलते-जुलते हैं। मनोवैज्ञानिक जिन सत्यों की बात कर रहे हैं वे सौ सालों में कितने बदल गये? सिगमंड फ्रायड ने जो स्थापित और मंडित किया था, उसी के शिष्य कार्ल गुस्ताव जुंग और एडलर ने अधिकांश धारणाओं व परिभाषाओं को खंडित कर दिया। और प्रत्येक पांच-दस साल में सारी मनोवैज्ञानिक धारणाएं बदल जाती हैं। उनकी परिभाषाएं बदल जाती हैं। ये परिभाषाएं रोज-रोज परिवर्तनशील हैं, आगे भी परिवर्तनशील रहेंगी। आज जिसे

आप सत्य जान रहे हैं वह कल बदल जाने वाला है; जरा विचारें, क्या वास्तव में उसमें सच्चाई है? और अपने विचार का भी भरोसा मत करना, क्योंकि जीवन में सैकड़ों बार तो आपके, स्वयं के विचार बदल चुके हैं!

सामयिक सत्य

अगर एक शब्द में हम कहना चाहें इन सारी बातों को जो मैंने आपसे कही राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, भाषागत, संवैधानिक, न्यायिक, धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, गणितीय, बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक... इन सबको एक शब्द में कहना चाहो तो कह सकते हैं सामयिक सत्य, समय के अनुसार, समय-समय पर यह बदलते जाएंगे। इसलिए ऋषि कहता है असतो मा सदगमय... इनको वह असत्य कह रहा है। इसको वह सत्य नहीं कह रहा है। इसमें एक अंश है सत्य का, लेकिन यह पूर्ण नहीं है। और यह परिवर्तित होता रहेगा। सत्य की परिभाषा ऋषि कहता है वह जो शाश्वत हो। कौन सा तत्व हमारे भीतर स्थायी है? शरीर तो कितने रूप धारण कर चुका। बचपन में छोटा सा शरीर था। किशोर हो गए, देह की आकृति बदल गई; जवानी आ गई, फिर आकार परिवर्तित हो गया। प्रौढ़ावस्था में कुछ, वृद्धावस्था में कुछ और हो गया। बहुत पुरानी तस्वीर को आप देखें तो पहचानना कठिन है कि आपकी ही तस्वीर है। मां के गर्भ में जब आप थे, उस समय की एक्स-रे या अल्ट्रासाउंड पिक्चर को आप देखकर किसी भांति नहीं जान सकते कि यह आपका फोटोग्राफ है! लेकिन एक दिन वही आपकी देह थी। उसके भी पूर्व गर्भाधान के वक्त आपकी देह इतनी सूक्ष्म थी कि केवल माइक्रोस्कोप से ही देखी जा सकती थी। कितना परिवर्तन होता गया!

तन तो फिर भी धीमी गति से बदलता है, मन की गति का तो कहना ही क्या! विचार बदलने में कितना समय लगता है? मन की चंचलता के समान ही हृदय की भावनाएं भी क्षणभंगुर हैं। शारीरिक, मानसिक एवं हार्दिक; यानी भौतिक, वैचारिक एवं भावनात्मक तलों पर निरंतर सब-कुछ सरिता की भांति प्रवाहमान है। पुराना पानी वाष्पीभूत होता जा रहा है, नये जलस्रोतों से आ रहा पानी जुड़ता जा रहा है। हम धोखे में हैं कि यह वही नदी है, वह लगातार बदलती जा

रही है। गंगोत्री में जो पानी था, बंगाल की खाड़ी में समुद्र में गिरते समय गंगा में संभवत: उस पानी का एक परमाणु भी न बचा होगा! क्या आप जानते हैं कि मनुष्य के शरीर में आज जो रक्त प्रवाहित हो रहा है, उसमें चार माह बाद पुराना एक लाल रक्त कोष, एक रेड ब्लड सेल भी शेष नहीं बचेगा। एक घन मिलीमीटर खून में पचपन लाख रेड ब्लड सेल्स होती हैं। एक घन सेंटीमीटर यानी सी.सी. में एक हजार घन मिलीमीटर होते हैं। एक लीटर में एक हजार सी.सी. होते हैं। ऐसा करीब पांच लीटर खून हमारी देह में प्रवाहमान है। लगभग 275 अरब लाल रक्त कोशिकाएं अभी मौजूद हैं। इनमें से प्रत्येक कोशिका का अधिकतम जीवनकाल चार माह है। अर्थात करीब दस अरब कोशिकाएं प्रतिघंटे मर रही हैं। कबीर ने तो शरीर को 'मुर्दों का गांव' कहा है। यह तो सिर्फ पांच किलो खून का हिसाब-किताब है। सत्तर-अस्सी किलो वजन वाले आदमी की देह में प्रतिपल कितना परिवर्तन हो रहा है, अंदाज लगाना मुश्किल है। विचार और भावनाएं तो फिर अति-सूक्ष्म हैं, उनका हिसाब तो असंभव ही समझो। अभी हैं, अभी नहीं हो गए। सपने सरीखे हैं।

सत्य की शाश्वत सत्ता

जिसकी सत्ता, जिसका एग्जिस्टेंस हो वह सत्य है। जिसे मृत्यु न मिटा सके। याद रखना मृत्यु केवल उसे ही न मिटा सकेगी जिसका कभी जन्म नहीं होता। वह जन्म-मरण के बाहर है, वही शाश्वत सत्य है। गुरु नानक देव जी कहते हैं एक ओंकार सतनाम... अकाल मूरति। वह एक ओंकार ही सत्य नाम है। वह समयातीत सच है। उपनिषद के ऋषि कहते हैं हरि ओम् तत्सत्। ओम् ही हरि है, सत्य है- ओम् की वह परमध्वनि!

ओम् का न जन्म, न मृत्यु

ऋषियों ने जिस सत्य को खोजा है वह है ओंकार की ध्वनि। जो कभी परिवर्तित नहीं होती। वह सदा-सदा से है। आज भी है, सदा-सदा रहेगी। उसका न

जन्म है, न मृत्यु है। वह सनातन है, वह प्राचीनतम भी है और वह नवीनतम भी है। उसे कह सकते हैं परम सत्य।

जब कहते हैं असतो मा सदगमय, तो उनका इशारा है- इस बदलाहट वाले सामयिक सत्य से अपरिवर्तनशील शाश्वत सत्य की ओर चलो।

मां-सत्या, पुत्री-मिथ्या ?

प्रश्नसार-

1. सत्य की कोख से माया कैसे जन्मी?
2. धर्म और विज्ञान में विरोध क्यों?
3. तपस्या : सत्य के साथ जीना

प्रश्न-१ : आदि शंकराचार्य कहते हैं 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या।' यदि ब्रह्म से ही जगत की रचना हुई है, तो सद्गुरु देव, कृपया समझाएं कि सत्य की कोख से मिथ्या का जन्म कैसे हुआ?

9

मैं आपसे कहना चाहूंगा अच्छा हो हम असत्य या मिथ्या शब्द का प्रयोग न करें। उसकी जगह हम यह कहें- कम सत्य से ज्यादा सत्य। सत्य से ही सत्य का

जन्म हो सकता है। कुछ अप्रगट सत्य है, कुछ प्रगट सत्य है। विज्ञान जिसे खोजता है वह प्रगट सत्य है। धर्म जिसे खोजता है वह अप्रगट सत्य है। मेनीफेस्टैड और अनमेनिफेस्टैड- मगर हैं दोनों ही सत्य! इसलिए मैं आपसे निवेदन कर रहा था जिसे असत्य कह रहे हैं उसे ऐसा समझें कि सत्य का एक छोटा-सा हिस्सा, एक छोटा सा अंश। वह पूर्ण नहीं है, इसलिए जब हम उसे पूर्ण की तरह मानते हैं तो वह असत्य हो जाता है। हमारी असम्यक दृष्टि के कारण। सत्य से सत्य का ही जन्म हो सकता है। सत्य से असत्य कैसे जन्मेगा? अगर बीज सत्य है तो वृक्ष भी सत्य होगा। उस वृक्ष में फिर बीज लगेंगे, वे भी सत्य होंगे। सत्य से असत्य का जन्म नहीं हो सकता। सत्य से मिथ्या का जन्म नहीं हो सकता।

कम सत्य एवं ज्यादा सत्य

...तो मैं एक नया शब्द देना चाहूंगा- ऋषि कहते हैं- तमसो मा ज्योतिर्गमय... उसकी जगह हम कहें- कम प्रकाश से ज्यादा प्रकाश की ओर चलो। असतो मा सदगमय- अंश सत्य से, कम सत्य से पूर्ण सत्य की ओर चलो। ऐसा अर्थ करें तो ज्यादा अच्छा होगा।

शंकराचार्य उसी को मिथ्या कह रहे हैं जिसे मैं कह रहा हूं कम सत्य। कम प्रकाश। अंधेरा वह नहीं है। प्रकाश तो उसमें भी है लेकिन उससे और ज्यादा प्रकाश हो सकता है। जिन सत्यों को हम जानते हैं उससे और अधिक पूर्णतर, और बेहतर, और समग्रतर सत्य हो सकते हैं। उनकी ओर हम बढ़ें। उस तरफ इशारा है।

क्षणभंगुर और शाश्वत सत्य

ऐसा समझें, एक सागर है, सागर में लहरें उठ रही हैं। सागर को अगर हम शाश्वत मानें तो लहर को हम क्षणभंगुर कहेंगे। तो क्या लहर असत्य हो गई? लहर भी तो सत्य है। हाँ यह बात जरूर है वह अभी उठी, अभी गिर जाएगी। वह क्षणभंगुर सत्य है। लेकिन लहर के भीतर क्या है? लहर के भीतर सागर ही तो है। और जब सागर सत्य है तो लहर कैसे असत्य होगी? चलो, दो शब्दों का प्रयोग कर लो- क्षणभंगुर सत्य और शाश्वत सत्य। जिसे मैं सामयिक सत्य कह रहा हूं वह

लहर जैसा है। वह आया और गया। लेकिन जिस सागर की छाती पर लहरें उठ रही और गिर रही हैं वह सागर सनातन सत्य है। तो सत्य की लहरों को अर्थात् क्षणभंगुर सत्यों को झूठ या मिथ्या कहना गलत होगा। उस शब्द से बड़ा भ्रम पैदा होता है। ऐसा लगता है जब शंकर कह रहे हैं कि जगत मिथ्या है...तो यह दीवाल मिथ्या है, यह खम्बा मिथ्या है, ये पेड़-पौधे मिथ्या हैं? नहीं। ऐसा उनका अर्थ नहीं है। उनका अर्थ इतना ही है यह इंद्रिय-अनुभूत सत्य है जिसे हम जान रहे हैं। एक और सत्य है अतीन्द्रिय सत्य। मैं 'रिलेटिव टर्मस्' प्रयोग करना चाहूंगा बजाय 'एब्सोल्यूट टर्मस्' उपयोग करने के।

असत्य और सत्य- ये बड़े द्वंद्वात्मक लगते हैं, एक-दूसरे के ठीक विपरीत लगते हैं। मैं आपसे कहना चाहूंगा कम सत्य और ज्यादा सत्य। छोटा सत्य और बड़ा सत्य। सत्य से सत्य का ही जन्म होता है। सागर से लहरों का जन्म होता है। सागर सच है, लहरें भी सच हैं। सागर शाश्वत है, लहरें क्षणभंगुर हैं। लेकिन माया या मिथ्या वे नहीं हैं। इससे समझना ज्यादा आसान होगा जैसे एक सोने से कई आभूषण बनते हैं। गले का हार बन गया, नाक में पहनने की नथनी बन गई, पैरों की पायल बन गई, इयर-रिंग बन गई।

मैंने सुना है-

चंदूलाल की प्रेमिका ने पूछा- आपने आज तक मुझे कुछ उपहार नहीं दिया। जब अपनी सगाई होगी तब आप मुझे एक रिंग देंगे न?

मारवाड़ी प्रेमी चंदूलाल ने आश्वासन दिया- जरूर दूंगा। मगर यह तो बता दो कि लैंड लाइन पर दूं कि मोबाइल पर रिंग दूं?

कंजूस मारवाड़ी के अपने अर्थ है! प्रेमिका सोच रही है अंगूठी वाली रिंग की, और चंदूलाल सोच रहे हैं टेलीफोन की घंटी बजाने की। कोई किसी की बात समझ ही नहीं पाता, सबके अपने-अपने निजी सत्य हैं। इसीलिए तो कहा जाता है कि- मेरिज इज ए थ्री रिंग सर्कस- एंगेजमेंट रिंग, वेडिंग रिंग, एंड सफरिंग। शंकर यह कहना चाह रहे हैं कि अंगूठी, इयर-रिंग, पायल, कंगन या हार मिथ्या हैं, सोना सत्य है।

स्वर्ण सत्य, आभूषण भी सत्य

9

ज्यादा अच्छा हो हम यह कहें कि सोना-रूपी धातु सत्य है और ये जो रूप हमने बनाए- हार के रूप में, पायल के रूप में, कंगन के रूप में, ये रूप क्षणभंगुर हैं। रूप बदल सकते हैं। आज पायल बनी, कल को अंगूठी बनवाई जा सकती है, लेकिन सोना तो सोना ही रहेगा। क्योंकि सत्ता है सोने की, उसका एक परमाणु भी नष्ट नहीं किया जा सकता। अगर हम गौर से देखें तो सोने ने जो परिवर्तनशील रूप रखे आभूषणों में, वे बदल जाएंगे, लेकिन सोना तो सदा-सदा रहेगा। एक परमाणु भी नष्ट नहीं हो सकता। इस ढंग से हम देखें तो पूरी दृष्टि बदल जाएगी और एक पॉजिटिव टर्मिनोलॉजी में, एक विधायक भाषा में चीजों को सरलता से समझ सकेंगे। पायल के रूप में पायल सच है। कंगन के रूप में कंगन सच है। मिथ्या कहने से झूठ का भ्रम पैदा होता है। अगर वह झूठ है तो क्या पायल को नाक में पहन सकते हैं? नहीं, पायल तो पैर में ही पहननी होगी। नाक में नथनी पहननी होगी। उनकी अपनी उपयोगिता वाली सच्चाई है।

हां, उनके भीतर जो सोना है- उस पायल के भीतर, उस कंगन के भीतर, उस नथनी के भीतर- वह निराकार एवं अरूप की भांति सत्य है...वह केंद्रीय सत्य है उसी के आधार पर परिधिगत सत्य होते हैं। माना कि परिधि घूम रही है गतिमान है, परिवर्तनशील है लेकिन जिस कील पर घूम रही है वह स्वयं अपरिवर्तनशील और शाश्वत है। स्मरण रखें, परिधि के रूप में परिधि भी सच है। तो हम ऐसा कहें- परिधि से केन्द्र की ओर चलो। असतो मा सदगमय। हम ऐसा अर्थ करें। और शंकराचार्य के इस वचन- 'ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या' इसको भी जरा दूसरे ढंग से समझें। इस जगत की जो बिल्डिंग ब्लॉक्स हैं वे ईंटें सब सत्य हैं। बिल्डिंग के रूप बदल सकते हैं। अभी जिस ओशो मन्दिर में हम बैठे हुए हैं इसकी डिजाइन अलग है। आप जिन कमरों में रुके हुए हैं उन कमरों की वास्तु-डिजाइनें अलग-अलग हैं। किचन की शिल्पकला अलग है। लेकिन जिस मिट्टी, ईंट, सीमेंट, रेत से ये सारे भवन निर्मित हैं, वे मूल-तत्व परमसत्य हैं। जो बेसिक ब्लॉक्स हैं, वे तो वही के वही हैं; और दुनिया में करोड़ों-करोड़ों प्रकार के भवन हैं, सब उन्हीं ईंटों से निर्मित हैं। और ये जो रूप व आकार अलग-अलग भवनों ने लिए, उनका अपना सत्य है।

सत्य-ब्रह्म से झूठे-ब्रह्म की रचना ?

एक परिवर्तनशील सत्य हुआ। एक शाश्वत सत्य हुआ। लेकिन शाश्वत के आधार पर ही सारा खेल चल रहा है। इस विहंगम दृष्टि से चीजों को देखो। तब चीजें बहुत आसान हो जाएंगी। फिर यह सवाल नहीं उठेगा कि सत्य-ब्रह्म से झूठे-ब्रह्म की रचना कैसे हुई? अरूप ने खूब रूप रखे। निराकार सब आकारों में प्रगट हुआ। और ऐसा ही होना चाहिये। जो सब आकारों में प्रगट हो रहा है वह स्वयं निराकार होना ही चाहिये। अन्यथा वह इतने सारे आकार कैसे लेगा? उसका स्वयं ही कोई स्वरूप होता तो सब रूपों में वह कैसे समाता?

बहु-आकृतियों व रूपोंवाला सत्य

उसका कोई रूप नहीं है वह अरूप है। शंकर यही कह रहे हैं कि ब्रह्म अरूप है, निराकार है, निर्गुण है, और जगत सगुण है, रूपोंवाला है, बहुत आकृतियों वाला है। आकृतियों से निराकार की ओर चलो। सगुण से निर्गुण की ओर चलो। झूठ इसमें कुछ भी नहीं है। अंश से अंशी की ओर चलो। यह अंश सत्य है, चलो उसकी ओर चलते हैं जिसका यह अंश है, उसकी तरफ आगे बढ़ते हैं। चार्वाक, एपीकुरस और दूसरे भौतिकवादी कहते हैं कि केवल संसार सत्य है ईश्वर वगैरह की बातें सब असत्य हैं, मिथ्या हैं। शंकर से ठीक उल्टी धारणा चार्वाकवादियों की है कि ब्रह्म मिथ्या, जगत सत्य।

ब्रह्म के प्रगट और अप्रगट रूप

मैं आपसे कहना चाहूंगा इन दोनों बातों का समन्वय। ब्रह्म भी सत्य। जगत भी सत्य। सत्य से सत्य ही जन्मता है। एक परिधिगत सत्य, एक केन्द्रीय सत्य। एक प्रगट सत्य, एक अप्रगट सत्य। लेकिन है वह सत्य ही। इस ढंग से हम थोड़ा देखना शुरू करें। फिर विज्ञान का और धर्म का भी मिलन हो सकता है।

धर्म और विज्ञान में विरोध क्यों ?

प्रश्न-2 : इसी संदर्भ में एक और मित्र ने पूछा है- विज्ञान सत्य की खोज करता है और धर्म भी। फिर दोनों एक निष्कर्ष पर क्यों नहीं पहुंचते? सद्‌गुरु देव, क्या धर्म और विज्ञान का पारस्परिक विरोध कभी समाप्त नहीं होगा?

निश्चित रूप से वह विरोध समाप्त हो सकता है। वह विरोध समाप्त ऐसे ही होगा- जगत भी सत्य, ब्रह्म भी सत्य, जब हम इस संपूर्ण सत्य को स्वीकार करें। ब्रह्म छिपा हुआ है, जगत में। वह अलग और भिन्न नहीं है। जगत ब्रह्म का प्रगट रूप है, ब्रह्म जगत का अप्रगट रूप है। विज्ञान खोजता है ब्रह्म के जगत रूप को, और धर्म खोजता है जगत के अप्रगट रूप को। दोनों ही सत्य की खोज कर रहे हैं। दोनों के आयाम भिन्न-भिन्न हैं। पूरी बात को समझ लें तो धर्म और विज्ञान का समन्वय हो सकता है, क्योंकि दोनों की खोज सत्य की है। विरोध का कोई भी कारण नहीं। दोनों सत्य के ही खोजी हैं। एक टेम्प्रेरी सत्य को खोज रहा है दूसरा एटरनल सत्य को खोज रहा है, लेकिन खोज तो दोनों सत्य को ही रहे हैं। और जो टेम्प्रेरी ट्रूथ है वह एटरनल ट्रूथ का ही छोटा हिस्सा है। अगर यह बात समझ में आ जाए तो विज्ञान और धर्म मिल सकते हैं।

धर्म और विज्ञान का समन्वय

मैं तो चाहूंगा कि भविष्य में धर्म नाम की चीज न हो। उसकी जगह एक नया विज्ञान हो जिसका नाम हो आत्म-विज्ञान या चेतना का विज्ञान। एक है पदार्थ का विज्ञान- साइंस। दूसरा है मन का विज्ञान- साइकोलोजी। और तीसरा हो- आत्मा का विज्ञान, अध्यात्म। ये तीन विज्ञान की शाखाएं हों और तीनों अपने-अपने क्षेत्र में सत्य की खोज करें। फिजिक्स, कैमिस्ट्री, बायोलॉजी, भूगोलशास्त्र, खगोलशास्त्र, मेडिकल साइंस, इंजीनियरिंग, और अन्य भौतिक-विज्ञान पदार्थ के सत्य को खोज रहे हैं। मनोविज्ञान विचार के, स्वप्न के, मन के, अचेतन के, अनकांसश के सत्य को खोज रहा है। और अध्यात्म

परम-चैतन्य के, सुपरकांसश के सत्य को खोज रहा है। इनमें आपसी विरोध की कोई जरूरत नहीं। भविष्य में अध्यात्म, आत्मविज्ञान के रूप में विकसित होना चाहिये। तब हम एक नई धारणा करेंगे- जगत भी सत्य, विचार भी सत्य और चैतन्य भी सत्य। विज्ञान के ये तीन रूप हो जाएंगे।

विज्ञान के तीन भावीरूप

भौतिक विज्ञान ने यह तो खोज लिया कि पदार्थ ऊर्जा से निर्मित है, विद्युत से निर्मित है। ओशो कहते हैं अगर विज्ञान और गहरे जाएगा तो शायद एक दिन वह पाएगा कि ऊर्जा चैतन्य से निर्मित है। कांशियसनेस का कन्डैंस्ड रूप ऊर्जा, और ऊर्जा का कन्डैंस्ड रूप पदार्थ है। चेतना सघन होकर ऊर्जा बन गई और ऊर्जा सघन होकर पदार्थ बन गई। और पदार्थ से सारा संसार निर्मित है। यदि इस क्रम को हम समझ लें। चेतना, ऊर्जा, पदार्थ तो विज्ञान और धर्म का समन्वय हो सकता है। क्योंकि विज्ञान खोज कर रहा है पदार्थ की और खोज करते-करते ऊर्जा पर पहुंच गया और थोड़ी गहरी खोज करेगा तो वह चेतना को भी पकड़ लेगा।

विज्ञान की बहुत-सी धारणाएं और नए अन्वेषण उस अप्रगट ब्रह्म की तरफ इशारा कर रही हैं। लेकिन पिछले तीन सौ सालों से वह धर्म के खिलाफ सोचता रहा है, दोनों में दुश्मनी चलती रही है; इसलिए एक-दूसरे को समझने की कभी कोशिश नहीं की गई है। थोड़ी-सी कोशिश करें तो बात पकड़ में आ जाएगी।

विज्ञान भी उस क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है। अब जैसे आधुनिक विज्ञान की धारणा है 'दि प्रिंसिपल आफ अन-सरटेनिटी' अर्थात् अनिश्चितता का नियम!... बड़ी अजीब बात हो गई यही तो ऋषि कह रहे थे कि चीजें रहस्यमयी हैं। इसलिए तो हम रहस्यदर्शी संत को मिस्टिक कहते हैं- जिसने रहस्य को जाना। अब विज्ञान भी वही रहस्यमयी बात कहने लगा। इससे पहले विज्ञान बिलकुल सुनिश्चित था। नियम का मतलब ही यह होता था कि सब कुछ बिलकुल सुनिश्चित है।

रहस्यमयी अनिश्चितता

...लेकिन अभी परमाणु से और सूक्ष्म तलों पर खोज करने से पता चला कि चीजें अनिश्चित हैं। और वे बदल जाती हैं, बदल सकती हैं। हम जिसे कण समझते

हैं वह कभी तरंगों जैसा व्यवहार करता है और तरंगें कभी कण जैसा व्यवहार करती हैं... और यह अनिश्चित है। यह बदल जाता है। सब-एटॉमिक पार्टिकल्स की खोज, परमाणु से भी और सूक्ष्मतर हिस्सों की खोज से पता चला कि उनके अपने-अपने मूड्स हैं, उनकी अपनी भावदशाएं हैं, कि वे कब कैसा व्यवहार करेंगे? अति-सूक्ष्म पार्टिकल्स के विषय में भविष्यवाणी नहीं हो सकती। वे बदल सकते हैं। इसका मतलब हुआ- उनके अन्दर चेतना है।

नसरुद्दीन, हलवाई तथा भैंस का किस्सा

नसरुद्दीन एक नए गांव में गया था वहाँ उसने कुछ मिठाई खरीदी। सौ रुपये का नोट दिया। मिठाई वाले के पास चिल्लर वापिस करने को नहीं थी। सात रुपये उसे वापस करने थे। उसने कहा, कल-परसों आप जब दोबारा आएं, तो ले लेना। नसरुद्दीन ने कहा- ठीक। नसरुद्दीन ने सोचा कोई पहचान बना लूं, नया शहर है, याद रहे या न रहे, कौन-सी मिठाई की दुकान? उसने देखा कि मिठाई की दुकान के सामने एक भैंस बैठी हुई है। उसने सोचा, ठीक पहचान हो गई। दूसरे दिन नसरुद्दीन फिर वहाँ से गुजरा। भैंस को देखा- कहाँ बैठी है भैंस? एक नाई की दुकान के सामने बैठी थी भैंस। नसरुद्दीन ने जाकर नाई की गरदन पकड़ ली। कॉलर हिलाकर कहा- हद कर दी सात रुपये के पीछे तुमने अपनी जात बदल ली। मिठाई की दुकान छोड़कर, हलवाई से नाई बन गये। शर्म नहीं आती!

हमें हंसी आती है। भैंस जीवित प्राणी है उसके अन्दर चेतना है। वह कल कहाँ बैठेगी, कोई ज्योतिषी पक्का नहीं बता सकता। बैठेगी, नहीं बैठेगी! क्या करेगी- अनिश्चित है। विज्ञान पहले सोचता था कि पदार्थ की इस दुनिया में सब कुछ सुनिश्चित है। बस जड़ नियम है प्रकृति के, उन्हें हम खोज लें तो सब कुछ पता लग जाएगा। सारे रहस्यों को हम उघाड़ लेंगे। और रहस्य उघाड़ते-उघाड़ते विज्ञान अब 'दि ला ऑफ अनसर्टेनिटी' को जान रहा है- अनिश्चितता का नियम- यानी कोई नियम ही नहीं! अब क्या करें... यह विरोधाभासी वक्तव्य वैज्ञानिकों को देना पड़ रहा है, अर्थात् विज्ञान भी रहस्य के जगत में प्रवेश कर रहा

है। क्योंकि ऊर्जा से भी और सूक्ष्म जगत में खोजबीन शुरू हो गई है। तो भविष्य में इसकी पूरी उम्मीद है कि धर्म और विज्ञान मिल जाएंगे। एक-दूसरे के प्रति जो शत्रुभाव था, वह समाप्त हो जाएगा। क्योंकि दोनों ही सत्य के खोजी हैं। हां, उनके आयाम भिन्न हैं। एक बहिर्मुखी है, दूसरा अंतर्मुखी है। एक पदार्थ-उन्मुख है, दूसरा आत्मोन्मुख है।

तपस्या : सत्य के साथ जीना

प्रश्न-3 : 'सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप॥'

सद्गुरु देव, कृपया इस दोहे के संदर्भ में सच और झूठ पर प्रकाश डालें?

उत्तर : इस दोहे के दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो शाब्दिक अर्थ... सामान्य भाषा में जिसे हम सच और झूठ कहते हैं। और दूसरा आध्यात्मिक अर्थ- जहां सत्य से मतलब परम सत्य से है। सांच बराबर तप नहीं- सत्य के साथ जीना तपस्या है। नीत्से ने कहा है- आदमी से उसके झूठ मत छीनना। बिना झूठ के वह न रह पाएगा। सत्य के साथ जीना तपस्या है। कोई आपसे कहता है 'आप कितने बुद्धिमान हो' आप भली-भांति जानते हैं कि इसमें सत्य नहीं है, फिर भी मान लेने का मन होता है।

एक स्त्री से नसरुद्दीन कह रहा था कि तेरी जैसी सुन्दर स्त्री मैंने कभी नहीं देखी और शायद भविष्य में भी कभी न देखूं। गजब तेरा सौंदर्य! अनिर्वचनीय!! बड़ी तारीफ कर रहा था उसकी सुन्दरता की और वह फूली जा रही थी जैसे कि सब स्त्रियां फूल जाती हैं। नसरुद्दीन ने सोचा इतनी ज्यादा फूल रही है...इतना ठीक नहीं है। उसने कहा एक बात और कहना चाहता हूं- 'यह बात पहले भी सैकड़ों स्त्रियों से कह चुका हूं। और भविष्य में नहीं कहूंगा इसका प्रॉमिस नहीं करता। यह तो मेरी आदत है कहने की।' स्त्रियां सुनना चाहती हैं कि मैं बहुत सुन्दर हूं। सत्य के साथ जीना बड़ा कठिन है। जैसे ही नसरुद्दीन ने उससे कहा कि यह सैकड़ों स्त्रियों से कह चुका हूं, एकदम वह नाराज, आग-बबूला हो गई। उसने कहा मैं तुमसे कहती हूं- 'अभी घर से बाहर निकल जाओ, सारा प्रेम समाप्त।'

सांच : तप, झूठ : पाप

सांच बराबर तप नहीं, सत्य के साथ जीना तपस्या है। और झूठ बराबर पाप, सारे पापों की जड़ झूठ से शुरू होती है। जहां-जहाँ तुम झूठ के बीज बोते हो। जहां-जहाँ तुम असत्य में उलझते हो वहाँ से पाप की दुनिया शुरू हो गई। पाप अर्थात तुम्हें और-और बहर्मुखी होना पड़ेगा। और-और असत्य में उलझना पड़ेगा। सत्य के साथ जीना तप है। लेकिन वह तप परम सत्य की ओर ले जाता है। नीत्से का कहना बिलकुल ठीक है आदमी से उसके झूठ मत छीनना। उसे झूठ बड़ी सांत्वना दे रहे हैं। कोई आदमी मानता है कि आत्मा अविनाशी है, बिना परेशानी के वह जी रहा है। मरने की कोई चिंता नहीं। आत्मा तो अमर है फिर पुनर्जन्म हो जाएगा। यद्यपि यह बात उसके लिए बिलकुल झूठ है। आत्मा अविनाशी है यह उसे पता नहीं। उसके लिए तो झूठ ही है। चाहे हो अविनाशी, चाहे न हो; लेकिन उसकी मान्यता उसे बड़ा कंसोलेशन, सांत्वना देती है। वह चैन से जी पाता है।

शाश्वत प्रेम या हवा का झोंका

किसी से प्रेम हो जाता है तो तुम कहते हो शाश्वत प्रेम...अमर प्रेम हो गया; जन्म-जन्म का साथ है। जो एक-दूजे के लिए बने थे, वे सदा-सदा के संगी मिल गए। अपने भीतर सत्य को देखो तो प्रेम हवा का झोंका है। अभी आया, अभी गया! कुछ भरोसा नहीं इसका कितनी देर यह झोंका रहेगा! लेकिन इस सत्य के साथ तो जीना मुश्किल हो जाएगा। अगर तुम सत्य की भाषा बोलो तो कहोगे- मैं कुछ जानता नहीं, कैसे प्रेम हो गया, कब तक टिकेगा, संयोग से अपना मिलना हो गया है। पहले भी कईयों से मिलन हुआ था, बड़े सपने देखे थे, सब हवाई महल खंडहर हो गए, इसका भी भरोसा नहीं.... यदि तुम ऐसा कहो तो प्रेम का सिलसिला आगे बढ़ेगा ही नहीं।

तुम जीवन को ऐसे जिए चले जा रहे हो जैसे तुम्हें बहुत समय तक जीना हो। लेकिन सत्य यह है कि किसी भी क्षण मृत्यु हो सकती है। लेकिन इस सत्य के साथ अगर तुम जीओगे तो आज की रात ही सोना मुश्किल हो जाएगा। कल होगा कि नहीं होगा- भगवान जाने, लेकिन आज की रात तुम सो न सकोगे अगर यह

बात भीतर गहरी बैठ जाए कि किसी भी क्षण मृत्यु हो सकती है। तुम ऐसा मानकर चले रहे थे बहुत लम्बे समय जीना है, बहुत योजनाएं, बड़ी लंबी प्लान्स। कौन जाने अभी अर्थक्वैक आ जाए और जो वाक्य मैं बोल रहा हूं उसे पूरा भी न कर पाऊं!

मैंने सुना है– चित्रगुप्त ने मृत्यु के देवता से पूछा– महाराज! आपने अचानक धरती पर भूकंप क्यों भेज दिया?

यमराज– क्या करूं यार, मार्च एंडिंग है, टारगेट पूरा करना है।

आपकी अपनी योजनाएं, और लंबी प्लान्स हैं, बेचारे यमराज को भी अपना टारगेट पूरा करना है।

आदमी से खिलौने मत छीनो

नीत्से ठीक कहता है कि आदमी के झूठ मत छीनना। वरना जीना मुश्किल हो जाएगा। तुम अपने जीवन में जरा विचारना कहां–कहाँ तुम झूठ में जी रहे हो? अगर तुम उसे गिरा दोगे तपश्चर्या शुरू हो गई। जंगल में जाने से कोई तपस्या नहीं होती। धूप में खड़े होने से या भूखे मरने से तपस्या नहीं होती। सत्य के साथ जीने से तपस्या होती है। सत्य के साथ जीओ।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप,

जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप।

उसी के हृदय में परमात्मा है, जिसके हृदय में सत्य है। क्योंकि सत्य और परमात्मा पयार्यवाची हैं।

9

सत्यमेव जयते सच ?

प्रश्नसार—

1. क्या सत्य कहा नहीं जा सकता ?
2. सच कड़वा, झूठ मीठा क्यों लगता है ?
3. सत्य विवादास्पद क्यों बन जाता है ?
4. क्या सच में सत्य की विजय होती है ?

प्रश्न-१ : सद्गुरु देव, लाओत्से कहता है कि सत्य कहा नहीं जा सकता। फिर सभी संत जो कहते हैं क्या वह असत्य है?

सत्य जाना तो जा सकता है लेकिन जानने के बाद भी अज्ञेय रहता है। इस विरोधाभास को समझना। जाना जाता है वह, फिर भी जानने के पार सदा-सदा रह जाता है। कोई यह नहीं कह सकता कि मैंने पूरी थाह पा ली। अज्ञेय रह जाता है। फिर जब सत्य कहा जाता है, शब्दों में ढाला जाता है, वहाँ से ही क्रमशः असत्य की शुरुआत हो जाती है ...सत्य पहले से कम हो जाता है। शब्दों में ढालते ही उसकी गुणवत्ता बदल जाती है। जब सुनने वाला सुनता है वह कुछ और ही सुनता है। हम

वही नहीं सुनते जो कहा जा रहा है।

मिसेज नसरुद्दीन का आज्ञाकारी सेवक

मैंने सुना है नसरुद्दीन की पत्नी ने अपने सरवैंट को डांटा कि गीले कपड़े क्यों उठा लाए हो... ये सूखने डाले थे ऊपर, अभी तो गीले हैं, गीले क्यों उठा लाए? जो भी काम करो, मुझसे पूछ कर किया करो। बिना पूछे मत किया करो। नौकर ने कहा मालकिन जैसी आपकी आज्ञा, अब आगे से पूछकर ही कोई काम किया जाएगा। दो घंटे बाद वह लौटकर आया, पूछने लगा कि मालकिन पिछले एक घंटे से तीन भैंसें और छः बकरियां हमारे बगीचे में घुसी हैं, क्या उनको भगा दूं?

कुछ कहा जाएगा कुछ समझ लिया जाएगा। जिन्होंने सत्य जाना है; पहली बात, उन्होंने यह भी जाना कि वह स्वभाव से अज्ञेय है। पूरा कभी जान नहीं सकते। दूसरी बात, जब उसे कहा, उसका बहुत ही छोटा अंश भाषा में समाया। जो जाना गया था उसमें द्वन्द्वआपस में मिश्रित थे। वहाँ प्रकाश और अंधकार एक साथ थे। लेकिन जब कहा, तो उसका एक ही पहलू कहा जा सकता है।

भाषा की मजबूरी : अधूरी

हमारी भाषा अधूरी है। पूरा सत्य उसमें आ नहीं सकता। उसको खंड-खंड तोड़कर कहना होगा। तीसरी बात, जब सुननेवाला सुनेगा, वह कुछ और ही समझेगा। बात और असत्य हो जाएगी। या हमें कहना चाहिए कि 'कम-सत्य' हो जाएगी। सत्य का प्रतिशत क्रमशः कम से कम होता चला जाएगा। चौथी बात, किताबों में जब वह छप जाएगा और पढ़ने वाले पढ़ेंगे तब सत्य न्यूनतर हो जाएगा। और जब पीढ़ी-दर-पीढ़ी वे किताबें हस्तांतरित होंगी उनमें सत्य करीब-करीब बचेगा ही नहीं। हां, करीब-करीब कह रहा हूं; फिर भी कुछ तो रह जाएगा।

शास्त्र : भूतपूर्व शोरबे का शोरबा

नसरुद्दीन के गांव से एक आदमी आया नसरुद्दीन के घर। नसरुद्दीन को वह कुछ मुर्गे-मुर्गियां भेंट दे गया। और उसने कहा इनका शोरबा बनवाइये। बहुत ही अच्छा शोरबा बनेगा। गांव से यह मुर्गे-मुर्गियां आपके लिए लाया हूं। वह मेहमान तीन-चार दिन रुका। नसरुद्दीन ने रोज शोरबा बनवाया। खुद भी खाया, मेहमान को भी खिलाया। एक सप्ताह बाद गांव से एक दूसरा आदमी आया;

उसने अपना परिचय दिया कि पहले जो सज्जन यहाँ आए थे, मैं उनका मित्र हूं जो आपके यहाँ मुर्गियां दे गये थे। नसरुद्दीन ने उसका भी स्वागत किया। शोरबा उनको भी पिलाया लेकिन पहले से डाइलूटेड, पतला करके, उसमें काफी पानी मिलाकर पिलाया- शोरबे का शोरबा। महीने भर बाद तीन-चार लोग आए और उन्होंने कहा जो आपके यहाँ मुर्गे-मुर्गियां दे गये थे, जिनका आपने खूब सत्कार किया था हम उनके पड़ोसी हैं। नसरुद्दीन ने उनका भी स्वागत किया। कहा, बड़ा धन्यवाद आप लोगों का। उनका भी सत्कार किया लेकिन शोरबे में बहुत ज्यादा पानी मिलाकर पिलाया- शोरबे का शोरबा का शोरबा। और छः महीने बाद आठ-दस लोग आ धमके। और उन्होंने कहा आपके लिए जिस आदमी ने मुर्गी भेजी थी हम उसके पड़ोसी के रिश्तेदार के पड़ोसी हैं। नसरुद्दीन ने उनकी भी आवभगत की। इस बार करीब-करीब पानी ही उनको पिलाया कि लो, यह शोरबा पीओ। उन्होंने कहा- यह कैसा शोरबा है इसमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। यह एकदम पानी लग रहा है- डिस्टिल्ड वाटर। नसरुद्दीन ने कहा जैसे आप पड़ोसी के रिश्तेदार के पड़ोसी के रिश्तेदार हैं, ऐसे ही यह भी मुर्गी के शोरबे के शोरबे के शोरबे के शोरबे का शोरबा है।

तो संत जिसे जानते हैं वह तो मुर्गी है। लेकिन जब वह कहते हैं तो शोरबा बन जाता है। जब श्रोता सुनता है तो शोरबे का शोरबा हो जाता है। जब किताब में छपता है तो शोरबे के शोरबे का शोरबा हो जाता है। और पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुजरते समय वह शुद्ध पानी ही रह जाता है। नाम भर रह जाता है 'भूतपूर्व शोरबा।'

सच कडवा, झूठ मीठा?

प्रश्न-2 : सच कड़वा किस कारण लगता है और सद्‌गुरु देव, झूठ इतना मीठा क्यों लगता है?

उत्तर: आपके कारण। आपके मन में वासनाएं हैं, अपेक्षाएं हैं। आप मान लेना चाहते हैं कि आपकी इच्छानुसार ऐसा हो! फिर आपको झूठ सप्लाई करने वाले लोग मिल जाएंगे। मार्किट का एक नियम है- जिस चीज की डिमांड होगी उसकी सप्लाई होगी। झूठ मांगोगे तो झूठ देने वाले मिल जाएंगे। तुम्हारे कारण ही, तुम्हारी वासनाओं के कारण, तुम्हारी अपेक्षाओं के कारण ही सच कड़वा लगता है।

असत्य : जो है ही नहीं

काश, तुम अपनी अपेक्षाएं गिरा दो! कामनाएं गिरा दो! तब तुम पाओगे कि सत्य ही मीठा है। असत्य कैसे मीठा हो सकता है? असत्य का मतलब है जो है ही नहीं। जो है ही नहीं वह कैसे मीठा होगा? नहीं, सत्य कड़वा नहीं होता। लेकिन तुम्हारी कामनाओं की वजह से वह कड़वा लगता है। तुम्हारी वासनाओं की वजह से कड़वा लगता है। कड़वा होना सत्य का गुणधर्म नहीं है।

कामना कडवी, निष्कामना मधुर

कांच के ग्लास में आधा पानी भर दो। एक चम्मच उसमें डालो, वह तिरछी दिखाई पड़ती है। तुम बाहर निकाल कर देखोगे वह सीधी है। फिर डालो तो फिर तिरछी दिखाई पड़ती है। तिरछा होना चम्मच की सच्चाई नहीं है, लेकिन पानी में डालने से वह तिरछी दिखती है। ठीक ऐसे ही कामनाओं व वासनाओं से भरके जब तुम सत्य को देखते हो तो वह कड़वा नजर आता है। वह उसकी गुणवत्ता नहीं। तुम्हारी कामनाओं के कारण वैसी विकृति प्रतीत होती है।

सत्य विवादास्पद क्यों?

प्रश्न-3 : एक ही सत्य को जानने वाले विभिन्न संतों ने इतनी अलग-अलग बातें क्यों बतलाई कि पृथ्वी पर इतने धर्म और सम्प्रदाय बन गये जिनमें निरंतर झगड़ा चलता रहता है। सद्‌गुरु देव, ऐसा क्यों?

उत्तर : पहली बात, संतों ने जो कहा, उनकी अभिव्यक्ति की शैली भिन्न-भिन्न थी। सबके अपनी-अपनी कहने की शैलियां, अपने-अपने अन्दाजे-बयां। दूसरी बात, जिन लोगों से बात कही गयी, वे लोग अलग-अलग थे। वे परिस्थितियां भिन्न-भिन्न थीं। एक ही बात कैसे कही जा सकती थी? जो परम सत्य जाना था, वह तो एक ही था; लेकिन कहने का ढंग अलग था। जिनसे कहा गया, वे लोग अलग थे। उनके लिए क्या अनुपयोगी है, क्या-क्या उपयोगी है; वे बातें अलग-अलग थीं। इसलिए अलग-अलग धारणाएं, अलग-अलग सम्प्रदाय, अलग-अलग धर्म बन गये। स्थूल बातें तो पकड़ में आ गईं, सूक्ष्म बातें हवा में खो गईं। जबकि स्थूल बातें केवल इशारा थीं सूक्ष्म की तरफ जाने के लिए, वे असली बातें नहीं थीं। कविताओं, कहानियों, उदाहरणों, इशारों और

उपमाओं में असली बात खो गई। ओशो कहते हैं– सदगुरु चांद की तरफ उंगुली दिखाते हैं कि उस ओर नजर उठाओ, कैसा अद्‌भुत सौंदर्य प्रगट हुआ है! और हम उनकी उंगुली पकड़ लेते हैं कि वाह, अभूतपूर्व है यह उंगुली!

निश्चित ही विभिन्न सद्‌गुरुओं की उंगुलियों की आकृति, रंग, बनावट आदि भिन्न–भिन्न होंगी, यद्यपि जिस चांद की तरफ वे संकेत कर रही हैं, वह चांद एक ही है। लेकिन विराट मनुष्य जाति की कठिनाई यह रही है कि उसने चांद को देखा ही नहीं, उंगुलियों की पूजा शुरू कर दी। विरले लोगों ने चांद को देखा, बड़ी भीड़ ने उंगुलियों के शास्त्र बना लिए। शास्त्रों के आधार पर दुकानें चलने लगीं, ग्राहकों की खींचातानी आरंभ हो गई। मैं आपसे कहना चाहूंगा– इतने धर्म और सम्प्रदाय जो चल रहे हैं; ये सब राजनीतियां हैं, व्यवसाय है। इनमें स्वार्थ जुड़े हुए हैं, उनके चलाने वालों के। संतों ने जो बात कही थी उसके कारण नहीं। बल्कि इसके आसपास स्वार्थी लोग इकट्‌ठे हो गये जिन्होंने अपनी दुकानें इन संतों के शब्दों पर खड़ी कर लीं। उनकी वजह से संप्रदाय बने हैं। संतों की वजह से संप्रदाय नहीं बने; संप्रदाय बनाने वाले असंत–लोग दूसरे हैं। जिन्होंने अध्यात्म की शिक्षा दी थी वे लोग कोई और ही थे, उनकी बात कुछ अलग ही थी; उन्होंने कुछ और सिखाया था मगर सुनने वालों ने कुछ और ही सीख लिया। फिर पीछे जो शिक्षक व धर्मगुरु सिखा रहे हैं .....वह तो बिलकुल ही शोरबे के शोरबे के शोरबे का शोरबा हो गया। सदा–सदा से ऐसा ही होता आया है। भविष्य में भी ऐसा ही होता रहेगा। एस धम्मो सनंतनो। उसकी व्यर्थ चिंता न लें। सार्थक की फिक्र करो।

क्या सत्य की विजय होती है?

प्रश्न–4 **: सद्‌गुरु देव, लोग कहते हैं सत्यमेव जयते। क्या यह भी एक कड़वा सत्य है?**

उत्तर : नहीं, यह मीठा झूठ है। सामान्यत: भीड़ जो मानती है वह असत्य ही होता है। यह लोगों की धारणा है कि सत्य जीतना चाहिये। लोग जिसे सत्य कहते हैं– ईमानदारी, लगन से काम करना, सच बोलना, रिश्वत न लेना, इन स्थूल बातों को जीतना चाहिये; ऐसा लोग सोचते हैं। लेकिन इसके कोई प्रमाण नहीं हैं। फिर लोगों को कैसे सत्य की तरफ प्रेरित करो। दिखाई तो यह पड़ रहा है कि जीसस क्राइस्ट सूली

पर चढ़ जाते हैं। मंसूर की गर्दन काट दी जाती है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम घर से निष्कासित कर दिये जाते हैं। कृष्ण को जिंदगी भर युद्ध करने पड़ते हैं। बहुत तकलीफें झेलनी पड़ती हैं बुद्ध को और महावीर को, सिक्ख गुरुओं को मुगल शासक खूब सताते हैं। दिखाई तो यही पड़ता है कि सत्य बराबर हारता रहा है। लेकिन यह कहावत बन गई है सत्यमेव जयते। अगर यह सच होती तो कहने की जरूरत भी नहीं पड़ती। लोगों को फुसलाने के लिए कहना पड़ती है। यहाँ सत्य के सामान्य अर्थ की बात कर रहा हूं।

..लेकिन मैं जिसे परम सत्य कह रहा हूं अगर उसके अर्थ में लो तब यह कहावत पूर्णत: सत्य है। सत्य की ही जीत होती है क्योंकि असत्य तो है ही नहीं; वह भला कैसे जीतेगा?लेकिन सत्य की जीत से ऐसा द्वंद्वात्मक मत समझना कि कोई हारेगा कोई जीतेगा। सत्य जीतेगा किससे?क्योंकि केवल सत्य ही है। वह एक ही है वह जीतेगा किससे? वह अकेला है। एक ओंकार सतनाम। किसी की जीत का सवाल नहीं। किसी के हारने का सवाल नहीं। सत्य एक ही है। इस ढंग से अगर लोगे तो सत्य की विजय होगी। क्योंकि वह अकेला ही है। इस पूरे संदर्भ के बाद मैं फिर से कहना चाहूंगा 'असतो मा सदगमय' का अर्थ, रूप से अरूप की तरफ, रूपों से रूपधारी की तरफ, आकार से निराकार की तरफ, अंश से अंशी की तरफ, मृण्मय से चिन्मय की ओर, देह से चैतन्य की ओर, आभूषण से स्वर्ण की ओर, लहर से सागर की तरफ, अहंकार से ओंकार की तरफ, सतह से गहराई की तरफ, परिधि से केन्द्र की तरफ, कम चैतन्य से ज्यादा चैतन्य की तरफ, पदार्थ से परमात्मा की ओर, गोचर से अगोचर की ओर, शब्द से अशब्द की ओर, दृश्य से अदृश्य की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, समय से समयातीत की ओर, द्वंद्वसे द्वंद्वातीत की ओर, द्वैत से अद्वैत की ओर, निम्नतर से श्रेष्टतर की ओर, कम प्रकाश से ज्यादा प्रकाश की ओर, प्रगट से अप्रगट की ओर, जन्म-मरण से अजन्मा व अमृत की ओर, इंद्रियगम्य सत्य से अतीन्द्रिय सत्य की ओर.... वही है परम सत्य, असतो मा सदगमय.... यह ईश्वर से प्रार्थना नहीं; आत्मा को झकझोरने के लिए चुनौती समझना। अपने आप को जगाओ, चेताओ, कम सत्य से ज्यादा सत्य की ओर उठो, विकसित होओ।